बाद उदयन होते हैं, अपनी किताब में कहते हैं वह तो जरज था, बूढ़ा और पुराना है, हम आधुनिक हैं, आधुनिक शब्द का आप प्रयोग करते हैं। मुकुंद की डिसकवरी है, उसको इतना आश्चर्य हुआ कि दसवीं शताब्दी के उदयन प्रसिद्ध दार्शनिक हैं, अपने को यह कहते हैं हम आधुनिक हैं। और उनके पहले जो जयंत हुए हैं कश्मीर में, वह कहते हैं यह जरज है। यह जो नएपन का आभास होता है, एक क्षितिज का, वह क्षितिज कभी खत्म नहीं होता। आप चलेंगे वह आगे चला जाएगा। यह जो चीज है यह कहाँ से आती है। यह आती है यहीं से कि यह अदृष्ट है, जो अभिव्यक्त है, जो असीम है, अनंत है वह अभिव्यक्त होती है, आपके माध्यम से निमित्त मात्रम् भव, निमित्त मात्र के कई अर्थ लिए गए हैं, एक अर्थ यह है कि उसको व्यक्त होने से रोकिए मत। बूढ़े-बुजुर्ग रोके तो उन्हें रोकने दीजिए। आप मत रुकिए। आप अभी जवान हैं। मैं तो अभी जवान हूँ।

प्रश्न : आपने सवाल उठाया संस्थाओं का, चिंतन परंपराओं के संदर्भ में। यह भी कहा कि आज वह संस्था है दिखाई नहीं देती। क्या यह संभव है उन संस्थाओं को पुनर्जीवित करना या पहले हम यह बताएँ कि वह संस्थाएँ कौन सी रहें जिससे कश्मीर में लिखनेवाले जो कवि, या साहित्यकार या इतिहासकार हैं वह पूरे भारतवर्ष में फैल जाती रही है। यही एक महत्त्वपूर्ण बात मैं समझता हूँ अगर हमारी ऐसी जीवंत संस्थाएँ रहीं और उसके बाद यह पुरुषार्थ व्यक्त है,पुरुषार्थ व्यक्त करनेवाली बात है तो क्या इन संस्थाओं को आज के संदर्भ में पुनर्जीवित किया जा सकता है ? यह संभव है या नहीं है। बस इतना ही मेरा सवाल है।

डॉ. दयाकृष्ण : यह प्रश्न मूलभूत प्रश्न है। क्योंकि आज जो हमारा ढाँचा है, तंत्र है, वह 47 के बाद का तंत्र है, 1857 के बाद का तंत्र है। उस तंत्र ने हमको सारी पुरानी व्यवस्था से विचार से विच्छिन्न कर दिया है। इसका फायदा भी है लेकिन मूलभूत यह है आज हम यह मान बैठे हैं और यह पश्चिम का विचार है। आप देखिए, आज हमारी मानसिकता देखने की दृष्टि, सोचने की दृष्टि इतनी पश्चिम से प्रभावित है कि हम अपने से प्रश्न ही नहीं पूछते, शायद यह बिलकुल

गलत है। हालाँकि हमारा रोजमर्रा का अनुभव यह कहता है कि यह गलत है लेकिन हम मानते नहीं। क्योंकि मानें तो फिर इस सबको डकारना पड़ेगा। आप सोचिए कि वैलफेयर स्टेट का आदर्श क्या है। अगर मनुष्य का वैलफेयर स्टेट में निर्भर होने लगेगा तो फिर उसका कल्याण हो ही नहीं सकता। ठीक है राज्य का यह कार्य है, न समय है, राज्य और धर्म के बारे में, धर्म और नीति के भेदों के बारे में इतनी विस्तृत चर्चा हुई है, राज्य और समाज के संबंध क्या हैं, राज्य और अर्थव्यवस्था का संबंध क्या है, वणिक और ब्राह्मण का संबंध क्या है, वणिक और क्षत्रिय का संबंध क्या है, इन सबका आपसी संबंध क्या है ? इनका संतों से, संन्यासी से, सवर्ण लोगों से क्या संबंध है, इस पर बहुत चर्चा हुई है। लेकिन यह पुराने जमाने का था कि राजाश्रित होना कोई अच्छी बात नहीं है। जो आश्रयदाता थे, फैले हुए, भिन्न-भिन्न थे, हर गाँव में हर आदमी अपना धर्म मानता था। अगर उसके पास साधन नहीं है तो उस सीमित साधन से वह कम-से-कम एक मेधावी बच्चे को पढ़ाए, किसी एक लड़की की शादी करे, कुछ करे, किसी की सहायता करे। इसीलिए आपके गाँव में आप सोच नहीं सकते। मैं मिसाल दी थी मिथिला में और बंगाल में 500 साल से ज्यादा तक नवन्याय का विचार पढ़ा। 40 साल के बीच में हमने अपने लोगों का पढ़ना छोड़ दिया है, आश्चर्यचकित होना छोड़ दिया है, 40 साल के व्यवधान में बंगाल में इतने बड़े न्यायिक पैदा हुए हैं जिनका सेंचुरी तक प्रभाव रहा, अब तक है। जगदीश है, मथुरा नाथ हैं गधाधर है 40 साल के बीच!...लेकिन आपको उनका नाम पता नहीं है। आपसे अगर मैं पूछूँ उन्होंने क्या किया था, आपको पता नहीं है। मुसीबत तो हम लोगों की यह है आज हम अपने देश में अज्ञानी बैठे हुए हैं। एक व्यक्ति का आप नाम नहीं ले सकते या कह सकते हैं कि इसका यह कंटरीब्यूशन है। हमने, इस अज्ञान की सीमा नहीं है और उस पर यह है कि हम वास्तव में जानते हैं, एरोगेंस ऑफ इगनोरेंस हैज नेवर बीन सो ग्रेट एज नाऊ। जानने का दम भरते हैं, दावा करते हैं, जानते कुछ नहीं हैं। एक एक्सपेरीमेंट कीजिए। यहाँ सब पढ़े-लिखे लोग बैठे हैं, विद्वान लोग बैठे हैं, आप एक कोश्चनीयर दीजिए।

आप हमें दस नाम बताइए आरीजनल इंडियन थिंकर्स के और यह बताइए कि उन्होंने किस चीज में आरीजनलिटी की है। आप पाएँगे कि चंद लोग बता सकें। जब यह अवस्था हो तब आपका प्रश्न यह होगा कि यह हो सकता है या नहीं हो सकता। होगा जरूर, कैसे होगा, यह कहना मुश्किल है। क्यों, जो संस्कृति और सभ्यता तीन हजार साल तक चल सकी वह अब भी चलेगी। अरे सौ साल नहीं चलेगी तो फिर चलेगी। हमारा यह जो लेक्चर है यह उस चलने की निशानी है, लौटने की।

प्रश्न : एक सवाल पूछना चाहता हूँ। यह जो अज्ञानता आपने कही, इतनी बड़ी परंपरा की यह अज्ञानता क्यों है?

डॉ. दयाकृष्ण : इसका जवाब तो सीधा-सादा है कि 1857 में अंग्रेजी युनिवर्सिटी बनी। उनमें आपके यहाँ एक एपरटाइट पैदा किया गया। आप साउथ अफ्रीका के एपरटाइट की बात करते हैं। क्या एपरटाइट हुआ, संस्कृत के साथ यह नहीं हुआ, अरेबिक परशियन के साथ भी हुआ और उसके विद्वानों को अलग कर दिया गया, आपको एक तरह का ज्ञान दिया गया, युनिवर्सिटियों में, कॉलेजों में, जिसमें यह पढ़ाया गया कि सारे ज्ञान का मूल स्रोत पश्चिम में है। अगर मैं भी वैसे ही पढ़ा हूँ, मगर आप बनते कैसे हैं, भगवान के यहाँ से तो बनकर नहीं आता। आप इससे संस्कृत होते हैं। हमारे यहाँ संस्कृत का मतलब होता है संस्कृत होना। संस्कृत कैसे होते हैं—पठन-पाठन से होते हैं, संस्कार से होते हैं। यह पठन-पाठन संस्कार आपको यह बताता है। आप देखिए, आपके यहाँ समाजशास्त्र पढ़ाया जाता है, समाजशास्त्र के जन्मदाता रेबर मार्क्स बताए जाते हैं। या आपके यहाँ पालिटिकल साइंस पढ़ाई जाती है, उसके जन्मदाता प्लेटो के रिपब्लिक हैं। आपके यहाँ कोई चिंतन नहीं हुआ है। आपके यहाँ जितना समाज में चिंतन हो रहा है लेकिन उसको बताया ही नहीं जाता।

प्रश्न : मेरा सवाल यह है हमने यह स्वीकार क्यों किया? अगर इतनी बड़ी परंपरा रही जो आप कहते हैं हमने इस प्रकार की पढ़ाई स्वीकार क्यों की? हम कहाँ थे, जितने लोग आप बताते हैं बड़े-बड़े, दिग्गज, वह कहाँ-कहाँ रह गए?

डॉ. दयाकृष्ण : इसका सीधा जवाब यह है जो राज्य करता है उससे सब प्रभावित होते हैं। जब आपके यहाँ मुगलराज था या इस्लामी राज था जो अरेबिक-परशियन पढ़ाई जाती थी। लोग गर्व समझते थे कि हम परशियन बोल सकते हैं, लिख सकते हैं। आप सोचिए 50 साल पहले तक आपके यहाँ उर्दू-परशियन के स्कॉलर होते थे, अरेबिक के होते थे, अब कितने हैं? जब अंग्रेजी आए तो उसके साथ भी बहुत कुछ आया। अरेबिक-परशियन के साथ भी आया था। अरेबिक साइंस आई थी तो वह भाषा सीखी जाती है। लेकिन जब विचित्रता नहीं हुई थी। ऐसा नहीं हुआ था कि पहले भी लोग अंग्रेजी भी जानते थे लेकिन संस्कृत वगैरह भी जानते थे, पढ़ते थे। अब जो नई पीढ़ी है उसमें यह है अंग्रेजी जानते हैं और वह नहीं जानते। हिंदी के लोग नहीं जानते संस्कृत। आप सोचिए कि आप परंपरा की बात करते हैं। जिस देश का सारा ज्ञान-विज्ञान जो भी है वह जिस भाषा में है इसका आपको पता नहीं है, फिर आप कैसे उससे संबंधित होंगे। कुछ भाव जगत में होते हैं। मैंने भाव जगत की चर्चा ज्यादा नहीं की। कल थोड़ी-बहुत करूँगा।

इसका जवाब मैं कैसे दे सकता हूँ। इसका जवाब तो कोई हो ही नहीं सकता। इतिहास में दे सकते हैं, संस्थाओं में दे सकते हैं, पढ़ने-लिखने में दे सकते हैं, सोशलाइजेशन में दे सकते हैं। दूसरा इसका और पक्ष है उसको भुला नहीं देना चाहिए। आज के संसार में जो शक्ति और अर्थ का खेल है उसमें आधुनिक ज्ञान होना चाहिए। देखिए, मैं यह नहीं कह रहा हूँ, मुझे गलत मत समझिए। आज का जो जगत है उसमें अगर आपके राष्ट्र को जीना है तो उसको वह ज्ञान जरूर होना चाहिए जो ज्ञान पश्चिम के पास है। देखिए, पश्चिम उस ज्ञान को अपने पास रखना चाहता है। एक तरफ तो यह कहता है ज्ञान जो है वह कोई प्राइवेट चीज नहीं होती, कोई सीकरेट चीज नहीं होती, ज्ञान में बढ़ोतरी तभी होती है जब सब मिलकर उसको ले जाएँ। दूसरी तरफ वह ज्ञान जो शक्ति का स्रोत है उसको वह किसी को नहीं देना चाहते। क्यों नहीं देना चाहते? ज्ञान होता है, जिससे अपार शक्ति मिलती है वह आप दूसरों को देना नहीं चाहते। और भी स्रोत हैं। आप

देखिए अगर आप आज की अर्थव्यवस्था लेते हैं, मोटर होगी, स्कूटर होगा तो पेट्रोल चाहिए, पेट्रोल आपको मँगाना पड़ेगा उसके लिए डॉलर देने होंगे। तो आज की अर्थ-व्यवस्था भी आप समझिए। इसके लिए जो ज्ञान है वह ज्ञान है। लेकिन जो ज्ञान, अपने आप भेद किया गया है, एक ज्ञान वह होता है जो शक्ति देता है, एक ज्ञान वह होता है जो धन देता है, एक ज्ञान वह होता जो मुक्ति देता है, जो स्वातंत्र्य देता है, आत्मविश्वास देता है, स्वावलंबन देता है। अब दोनों ज्ञानों में क्या संबंध है? आप पीछे लौटिए। अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र के जो ग्रंथ हैं, समाजशास्त्र के, व्यवहार शास्त्र के उनमें जो मोक्ष शास्त्र के ग्रंथ हैं उनमें क्या संबंध है। उनमें यह संबंध की चर्चा की गई है और ऐसा नहीं है वे लोग भी परेशान नहीं थे, वे लोग भी परेशान थे। क्योंकि अर्थ एक ओर ले जाता है, काम दूसरी ओर ले जाता है और धर्म तीसरी ओर ले जाता है और नीति चौथी चीज होती है। इनमें आपस में क्या संबंध हैं। अब देखिए मुकुंद लाट की मैंने बात की है। उन्होंने उन्मूलन में धर्म संकट पर कम-से-कम 6 या 8 लेख लिखे हैं। आप पढ़िए उन्हें। महाभारत से बड़ा ग्रंथ कौन हो सकता है धर्म संकट का। हर स्थान पर, पग-पग पर, कदम-कदम पर धर्म संकट है और स्वयं कृष्ण उससे निपट नहीं सकते।

समाप्त

अध्यक्ष : कल शाम को 6 बजे दूसरा लेक्चर दयाकृष्ण जी का होगा।

भारतीय चिंतन परंपराएँ : नए आयाम, नई दिशाएँ

[10.12.1997]

सुश्री इला : वात्स्यायन जी की एक कविता है :

नीचे हर शिखर पर देवल,
ऊपर निराकार तुम केवल।

नंदा देवी शृंखला में से यह कविता है। इसको कहकर आप सब का स्वागत करती हूँ। डॉ. विद्यानिवास मिश्र से अनुरोध करती हूँ कि वह अध्यक्ष का पद सँभालें और डॉ. दयाकृष्ण जी से अनुरोध करती हूँ—नीचे हर शिखर पर देवल, ऊपर निराकार तुम केवल। अनुरोध है डॉ. दयाकृष्ण जी के भाषण में आप लोग भाग लेकर के हम लोगों की खुशियाँ बढ़ाएँ।

कल एक छोटी सी विचार गोष्ठी रखी है जिसमें इन दो दिनों के भाषणों को लेकर चर्चा आप लोगों के मन में आई या कुछ बातें आईं वह आप उसमें उठा सकते हैं। आप लोगों के सहयोग से वह शुरू होगी और उसमें इसी विषय पर चर्चा होगी कल 11 बजे, यहाँ पर साहित्य अकादेमी में इसी हॉल में।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र : मैं डॉ. दयाकृष्ण जी से अनुरोध करूँगा कि वह द्वितीय व्याख्यान प्रारंभ करें।

डॉ. दयाकृष्ण : कल जिन बातों की हमने चर्चा की थी उनके खुद अनेक आयाम हैं। उनमें किसको लेकर आगे बढ़ाया जाए यह मेरे लिए भी

समस्या है और शायद आपके लिए भी।

एक बात अभी वात्स्यायन जी की दो लाइनें इला जी ने पढ़ी। उसका कुछ गहरा संबंध उस बात से है जो हम कह रहे थे। वास्तव में कोई निराकार है और हर शिखर पर देवल है। देवल का क्या अर्थ है? देवल एक प्रतीक है उस पुरुषार्थ का, उस आदर्श का, मनुष्य जिसकी साधना करता है। अनेक आदर्शों की साधना करता है। कल हमने यह भी कहा था कि हम अपने को मध्य में पाते हैं, हर मनुष्य का हर आयाम जब वह पीछे की ओर देखता है तो एक अनंत शृंखला से बँध अपने को पाता है। यह जो अनंतता है पीछे की और इतना ही आगे की है और हम एक बीच की कड़ी हैं। एक अन्य प्रसंग में गीता में कहा है कि—अव्यक्त दीना भूतानि, व्यक्त मध्यानी भारतः, अव्यक्त नेराण्य नवेम। अव्यक्त और व्यक्त के बीच का जो संबंध है, आदृष्ट और दृष्ट के बीच का जो संबंध है, नित्य और अनित्य के बीच का जो संबंध है वह भारतीय चिंतन परंपरा के मूल में रहे हैं। अब यह जो परंपरा है इसके बारे में हमने दो बातें कही थीं कि परंपरा एक नहीं है अनेक हैं। दूसरी बात यह कही थी कि परंपरा का अर्थ ही यह होता है कि आपने कुछ पाया है, उसके प्रति एक आपकी दृष्टि होती है। आप उसमें कुछ परिष्कार करते हैं, कुछ जोड़ते हैं, कुछ घटाते हैं फिर यह किसी को दे देते हैं। यह स्वयं एक परंपरा का अंग बन जाती है तो कल का भाषण एक निमंत्रण था आपको, यह जो हमारी परंपराएँ हैं, समृद्ध हैं, उनसे आप कुछ जुड़िए। भाषा की चर्चा थी, कुछ अर्थ की, अनंत की वाक् की बात की थी। एक अनंत और होती है जिससे पश्चिम जुड़ा था। जुड़ते सब अनंत से हैं क्योंकि सार्थकता वहीं से आती है लेकिन किस अनंत से आप जुड़ते हैं यह एक संस्कृति का चयन होता है, कैसे होता है इसका पता नहीं है। लेकिन हमें मिला है, किसी ने यह चुना था, क्योंकि चुना था इसका कोई उत्तर नहीं है। पश्चिम ने संख्या की अनंता को चुना था। देखिए, गणित पर विचार कीजिए—एक-दो-तीन-चार, कभी-कभी खत्म नहीं होता। पश्चिम ने जब यह देखा तो पश्चिम का दो-ढ़ाई हजार साल का इतिहास जो है वह गणित तथा ज्यामिती के चारों ओर घूमता

है। शुद्ध बुद्धि स्वरूप को देखता है। शुद्ध बुद्धि के स्वरूप को उसमें पाता है। उसकी कहानी तो मैं नहीं कहूँगा आज, लेकिन इशारा जरूर करना चाहूँगा। उस अनंतता की ओर जो शुद्ध बुद्धि गणित में पाती है और दूसरी अनंतता जो भाषा के अर्थ में पाती है। अर्थ की चर्चा हमने कल की थी आज बुद्धि के स्वरूप पर थोड़ा और विचार करेंगे और फिर कर्म और भाव जगत की सृष्टि पर। हमारा भाव बोध क्या है, हमारा कर्म बोध क्या है। हमारा प्रश्न और हमारी समस्याएँ क्या हैं उनकी कुछ चर्चा आपके सामने करूँगा।

देखिए, बुद्धि का लक्षण क्या है? लक्षण बनाना कोई आसान बात नहीं होती है। हमारे यहाँ लक्षण व्यापार न्याय का बुद्ध एक सतत व्यापार रहा है जिसमें हमेशा अव्याप्त दोष, अतिव्याप्त दोष उत्पन्न होते रहे हैं। लेकिन बुद्धि का एक लक्षण जरूर है। वह लक्षण यह है कि बुद्धि हमेशा प्रश्न ही नहीं पूछती बल्कि अपने से यह भी पूछती है कि यह जो मैं सत्य मान रही हूँ यह वास्तव में सत्य है या नहीं। इसका प्रतिपक्ष क्या है, इसका पूर्वपक्ष क्या है। जो बात कही जा रही है उसके विरोध में तर्क क्या दिए जा सकते हैं। क्या ऐसे तथ्य हैं जो मैं कह रहा हूँ उसको विसंगत करते हैं। यह अपने आपसे प्रश्न पूछना, बुद्धि का ऊहा-पोह हमारे यहाँ कहा गया है, विज से कहा गया है यह लक्षण है। आप देखिए, आज हमारे यहाँ एक धारणा है, आज के हर पढ़े-लिखे आदमी में कि पश्चिम बुद्धि का केंद्र है। अगर मैं यह कहूँ कि ऐसा नहीं है तो आपको आश्चर्य होगा। आप सोचेंगे यह पागल हो गए हैं, लेकिन नहीं, अगर आप हमारे ग्रंथों को देखिए तो इसमें वह बुद्धि का स्वरूप है, यह परिलक्षित होता है प्रत्यक्ष रूप में। कोई भी व्यक्ति जो सिद्धांत की स्थापना करता है वह पहले यों कहता है मैं किस चीज की स्थापना करना चाहता हूँ। फिर उसके लिए तर्क देता है कि आधार क्या है। फिर कहता है इस आधार का पूर्वपक्ष क्या है, फिर उस पूर्वपक्ष का खंडन करता है फिर सिद्धांत की स्थापना करता है, यही नहीं, वह इसके आगे भी जाता है। वह पूर्वपक्ष की जो बातें करता है, एक पूर्वपक्ष नहीं अनेक पूर्वपक्ष और कुछ लोग तो आपको आश्चर्य होगा पूर्वपक्ष के भी पूर्वपक्ष बनाते हैं और फिर उनका खंडन करके

पूर्वपक्ष को और मजबूत करते हैं, तब उसका खंडन करते हैं। क्या कोई भी ऐसा दार्शनिक ग्रंथ है पश्चिमी परंपरा में जो इस तरह लिखा जाता है ? और फिर आप और हम सब लोग यह मान बैठे हैं कि भारत में भारतीय परंपरा में कोई बौद्धिक परंपरा नहीं है। यहाँ के ग्रंथ ही इस प्रकार लिखे गए हैं। अब अगर आप सोचिए तो यह जो परंपरा है बुद्धि की, इसी के संदर्भ में मैंने कल अपना भाषण प्रारंभ किया था कि— एको न: ऋषियश वच: प्रमाणाम्। कोई ऋषि ऐसा नहीं है जिसका वचन प्रामाण्य है, स्वत: प्रामाण्य है क्योंकि बुद्धि तो सदैव प्रश्न करती है, अपने से भी करती है दूसरे से भी करती है। इसका मतलब यह नहीं है कि वह संशय-ग्रस्त है, संशय को निवारण करना चाहती है। अगर संशय नहीं है तो बुद्धि का कार्य पूरा हो ही नहीं सकता इसीलिए आप सोचिए, न्यायसूत्र में प्रमाण प्रमय संशय, तीसरी चीज कि संशय के बगैर आपकी जो विचारधारा है वह चलती ही नहीं है। संशय का निवारण करती है और फिर नया संशय उत्पन्न होता है और वास्तव में अगर आप परंपरा को जानना चाहते हैं तो वह उन संशयों की परंपरा है जिनका उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश की गई है। हम इस प्रकार क्यों नहीं रखते। केवल सिद्धांत की परंपरा नहीं है, संशय की परंपरा है क्योंकि संशय का निवारण करके ही सिद्धांत की पुष्टि की जाती है।

अब थोड़ा बुद्धि के कुछ आयाम, भाव जगत के आयाम और कर्म पर चिंतन जो इस देश में हुआ है उसको मैं थोड़ा आगे बढ़ाने की कोशिश करूँगा। दिखाऊँगा आपको, वास्तव में वह परंपरा ही समृद्ध नहीं है बल्कि हम उसमें बहुत कुछ कर सकते हैं। कहाँ से ले ? कल मैंने कहा था कि अर्थ के बारे में जो चिंतन है वह एक अजीब समस्या उत्पन्न करता है। क्योंकि शब्द जो है वह वर्ण से बनता है, वर्ण किसी और चीज से बनता है और यह जो बनना है यह किसी एक अर्थ को अभिव्यक्त करता है। वह अर्थ जो अभिव्यक्त होता है वह एक है लेकिन अनेक के द्वारा अभिव्यक्त होता है। एक और अनेक का यह संबंध, भेद और अभेद का संबंध भारतीय चिंतन परंपरा के मूल में रहा है। लेकिन चिंतन की विधि चिंतन के विषय होते हैं लेकिन चिंतन की विधाएँ होती हैं और थोड़ी विधाओं की बात करें। आप देखिए,

बुद्धि का मैंने कहा कि एक लक्षण है संशय और प्रश्न उठाना, उसका निवारण करना, पूर्वपक्ष स्थापित करना। लेकिन बुद्धि अपने कार्य में प्रवृत्त कैसे होती है चाहे वह किसी विषय पर चिंतन करे, चिंतन की प्रक्रिया क्या होती है ? हमारे यहाँ एक जिसको कहते हैं बुद्धि का, एक विधा किसी भी विषय को समझने के लिए होती है कि उसके जो अवयव हैं उस अभिव्यक्ति के अवयवों से यह अवयवी बना है। यह जो अवयव को ढूँढ़ने की बात है वह अंतिम मात्रिकाएँ क्या हैं जिन मात्रिकाओं के संबंध से यह बनता है। मात्रिका की बात बहुत पहले नृत्य के संबंध में, संगीत के संबंध में उठी है। यह बात मुकुंद ने कई बार स्पष्ट रूप से कही है कि इस पर ध्यान नहीं दिया गया। मैंने सोचा था कि अगर मैं आपसे कहूँ कि जयपुर में एक ऋषि रहते हैं जो मुकुंद नाम से प्रसिद्ध हैं तो मुझे लगा कि आपको अचंभा होगा। आप कहेंगे यह क्या बकवास कर रहे हैं। अरे, आजकल तो ऋषि होते नहीं हैं और मुकुंद तो ऋषि है ही नहीं, लेकिन वास्तव में आज भी ऋषि हैं, खाली मुकुंद ही नहीं है, उनके नाम अनेक हैं, विद्यानिवास जी बैठे हैं, पांडे जी बैठे हैं। यह सब कौन-कौन हैं, यह सब ऋषि हैं और पुराने जमाने के ऋषि कई तरह के थोड़े ही होते थे। जो विचारक हैं, जो चिंतक हैं, जो कुछ कहता है उसकी बात आप सुनते नहीं हैं। आप देखिए, मात्रिका से अगर कभी आप देखें कि हमारे यहाँ नृत्य को कैसे समझा गया है तो एक-एक आपके शरीर का जो अंग है उसमें गति किस प्रकार की हो सकती है, चलन हो सकता है, उसको जिस प्रकार से विश्लेषण करके देखा गया है आपको आश्चर्य होगा। आपकी भोंहें हैं, आपके होंठ हैं, आपका चिबुक है, आपके कान हैं। कोई ऐसा अंग नहीं है जिसके बारे में यह नहीं देखा गया कि इसकी कितने प्रकार से गति हो सकती है। यह सब उसकी मात्रिकाएँ हैं और मात्रिकाओं से अंगाहार बनता है। जब नृत्य होता है तो नृत्य क्या होता है ? उन्हीं मात्रिकाओं से जो नर्तकी है या नर्तक है वह एक अंगाहार बनाता है तो विश्लेषण की यह पद्धति कि कोई भी चीज है उसकी कितनी मात्रिकाएँ बन सकती हैं, उसके अवयव कितने हैं ? उन अवयवों के फिर हैं और फिर उन अवयवों के कितने हैं, हम कहाँ पहुँचकर रुकते

हैं और फिर उनके संबंध से जो चीजें बनती हैं और फिर आपके सामने एक जिसको कहते हैं एक जगत खुलता है। वह जगत क्या है? वह कर्तृत्व का है कि इन मात्रिकाओं को कितने प्रकार से अंगाहार में बनाया जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि जब शिव ने नृत्य किया, तांडव ने उनका नृत्य देखा तो उन्होंने उनके नृत्य को मात्रिकाओं में विश्लेषित करके फिर उनसे जो अंगाहार वह बनाते थे उनकी चर्चा की। लेकिन बाद में उन्होंने यह देखा कि शिव तो कुछ ही नृत्य नाचते थे, उन मात्रिकाओं से अनेक नए नृत्यों की रचना हो सकती थी। आप देखिए इसमें इस पद्धति में और उस पद्धति में जिसे हम वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं जो डिकार्ड की बात करते हैं उसमें क्या अंतर है। मनुष्य की बुद्धि, मनुष्य की चेतना एक ही विधाएँ अपनाती हैं तो यह जो मात्रिका का और अंगाहार का संबंध है, अवयव और अवयवी का संबंध है, यह एक विधा है लेकिन यह जो अवयव-अवयवी का संबंध है इस पर बहुत चिंतन हुआ है और इस चिंतन के संबंध में बोधों ने कहा कि यह जो विश्लेषण है यह तो कहीं रुक नहीं सकता। धर्म कीर्तिका एक प्रसिद्ध श्लोक है। आप देखिए कितना सुंदर श्लोक है : यथा-यथा विचारयंते ऋषियंते। तथा-तथा, जैसे-जैसे बुद्धि विचार करती है, विश्लेषण करती है ऋषियंते सारा बिखर जाता है, कुछ नहीं रहता। हमको लगता है जो स्थूल है जिसको हम छू सकते हैं जैसे ही हम विचार करते हैं वह बिखरने लगता है और फिर अंत में शून्य में मिल जाता है तो यह एक परंपरा है, इसको छोड़िए कि बोधों ने क्या कहा। लेकिन ज्ञान की विधा, बुद्धि की विधा है। एक दूसरी विधा वह इसके बिलकुल उलटी है। वह अदृष्ट से चलती है। अरूप से चलती है। वह निराकार से चलती है। वह उससे चलती है जो सब में व्याप्त है, वह विश्लेषित नहीं करती। वह देखती है कि जो कुछ है हमारे सामने वह किसमें व्यवस्थित है, किसमें स्थित है, किससे उसमें प्राण का संचार हो रहा है। यह एक भिन्न विधा है। यह जो दो विधाएँ हैं हमारी बुद्धि की, हमारे चिंतन परंपराओं में वह साथ-साथ चली हैं। कोई भी शास्त्र लेंगे उसमें दोनों अंग रहते हैं एक साथ, एक तरफ वही, एक तरफ विश्लेषण हो रहा है दूसरी तरफ प्रयोजन

की बात हो रही है। एक तरफ हम कह रहे हैं इससे कस निश्रेयस की सिद्धि होती है। हमने कल बात कही थी। हर विधा का अपना निश्रेयस होता है और उन निश्रेयस के आपसी संबंध की भी चर्चा की थी। तो यह जो दो पक्ष हैं बुद्धि के, ग्रीस में भी दो भेद किए गए थे। एक लोकोस का और एक नायोस का। लोकोस विश्लेषणात्मक बुद्धि का एक पक्ष है और जो नायूस है वह सब का एकीकरण करता है, समीकरण करता है। सबको एक साथ मिलाकर देखता है। अभी मैंने आपसे मात्रिकाएँ और अंगाहार की बात की। दूसरी तरफ मैंने इस तरफ इशारा किया बिलकुल इससे विरोधी दिखनेवाली चिंतन की विधा है जो पूर्ण को देखती है और उसके संदर्भ में जितने भी अवयव या अवयवी, जो भी दृष्ट हैं उसको देखने की कोशिश करती है और उससे संबंधित करती है। आप सोचिए यह चिंतन की विधा ने एक ऐसी समस्या को जन्म दिया जिसमें सारे पश्चिम की परंपरा में या तो विचार हुआ ही नहीं है या बहुत कम। वह विचार है अभाव का। जो भाव रूप है वह तो हमें दिखता है, हमारी पकड़ में आता है। हमारी इंद्रियों को ग्रहण होती है लेकिन अभाव रूप जो है उसको हम कैसे ग्रहण करें, जो है नहीं। जो है नहीं तो उसकी बात क्यों करते हैं। लेकिन वह जो है नहीं, देखिए जो बुद्धि है उसमें एक पक्ष है वह नकारती है, वह प्रश्न करती है वह यह नहीं करती ऐसा क्यों है। वह यह पूछती है ऐसा क्यों नहीं है। यह जो नहीं है हमको अनेक दिशाओं में ले जाता है। एक दिशा इसकी है आदर्श की। जो है वह वैसा नहीं है जैसा उसे होना चाहिए। अभी यह है और चाहिए का भेद एक अजीब भेद है। यह चाहिए और है का भेद कैसे आता है, जो है वह तो प्रत्यक्ष है, अनुभव है, ऐसा है। लेकिन आप कहते हैं नहीं, आपकी चेतना उसे अस्वीकार करती है। यह अस्वीकरण क्या है? इस पर अगर हम थोड़ा सोचें कि अस्वीकरण जो है वह अस्वीकरण किसी उस रूप से संबंधित है जो प्रत्यक्ष में है तो नहीं लेकिन वास्तव में होना चाहिए। इसकी भावना कैसे होती है, देखिए, जब हम कर्म के द्वारा, कर्म कहाँ आता है, कर्म आता है उस वस्तुस्थिति को बदलने के लिए जिसको हम प्रत्यक्ष रूप में, भाव रूप में देखते हैं लेकिन जिसका एक

पक्ष हमें यह कहता है यह वास्तव में वैसा नहीं है जैसा उसको होना चाहिए तो अभाव जो है, जो है नहीं वह उससे अधिक मूल्यवान है, जो है और हम कर्म के द्वारा उसके रचयिता बनते हैं। पर बात अजीब है, कर्म की कहानी उससे भी अजीब है, जो बुद्धि की कहानी है। क्योंकि कर्म में, जैसे बुद्धि में आप कोई सिद्धांत बनाइए, आप कोई भी पूर्वपक्ष स्थापित का खंडन करें और कहें कि यह सत्य है। दूसरे को ही वह अस्वीकार नहीं होगा। आपको भी बाद में उसमें कुछ संशय लगेगा। अगर आपकी बुद्धि जीवंत है, अगर आप दोहराते नहीं हैं तो उसमें आपको फिर संशय होगा। उसी प्रकार जब आप वस्तुस्थिति में उस अभाव को अधिक सत्य मानकर उसके निराकरण करने की कर्म द्वारा चेष्टा करते हैं तब फिर कुछ बदलता है। लेकिन जो बदलता है वह भी आपको पसंद नहीं आता। आदमी वह प्राणी है जिसको कुछ पसंद नहीं आता। उसके सामने कुछ ही आप बनाइए, आप कविता लिखते हैं, कहानी लिखते हैं, दुनिया भर की चीज लिखते हैं फिर आप किसी को सुनाते हैं तो वह कहता है नहीं। हाँ, अच्छी है, चलती है। आप देखिए, आपने सारी मेहनत लगा दी। यह बात घर में रोज होती है, खाना बनाया, पसंद आया तो आप कहते हैं हाँ, ठीक है। जो गृहणी है, बनानेवाली है उसका मुख सूख जाता है। क्यों? क्योंकि उसने बहुत मेहनत से सब कुछ बनाया। कभी-कभी जरूर होता है, आप कहते हैं कमाल है, ऐसा कभी हमने देखा ही नहीं है, ऐसा स्वाद कभी पाया ही नहीं। पर वह कितना कम होता है। आप देखिए, थोड़ा मैं सोच रहा था, मन की बात करना बड़ा कठिन है। बुद्धि के लक्षण बनाए जा सकते हैं पर मन का लक्षण बनाना बहुत ही कठिन है। इज्जो का लक्षण बनाया जा सकता है जो मन से परे है, उसकी चर्चा की जा सकती है, बुद्धि से परे लेकिन मन की। कुछ दिन पहले मैंने बनाने की चेष्टा की उसको आपके सामने रखता हूँ। इसलिए नहीं कि वह आप स्वीकार करें इसलिए कि उस चेष्टा में पीछे जो बात है वह आप बात करने की चेष्टा करें और खुद बनाइए। मन में एक अजीब चीज होती कि मन में इच्छा उत्पन्न होती है लेकिन इच्छा कैसे उत्पन्न होती है। इच्छा के पहले कोई अनुभव होता है। वह

स्मृति जनित होती है लेकिन स्मृति ही नहीं, उसमें एक कल्पना होती है कि ऐसा होना चाहिए, कुछ हुआ था। हमने किसी क्षण कोई अनुभव किया था। जो बहुत ही मूल्यवान लगा था ऐसा फिर बार-बार हो लेकिन जब वह बार-बार होता है तो आपको पसंद नहीं आता। आप कहते हैं कि नहीं, इसमें कुछ कमी है फिर आप उसमें कुछ परिष्कार करते हैं। लेकिन जो स्मृति है उसके पीछे एक अनुभव है। उस अनुभव के पीछे क्या है? मैंने उसको इस प्रकार रखा। पांडे जी और विद्यानिवास जी जरा इसको देखें, परिष्कार करें। मैंने कहा वासनामूलक, वह अनादिवासना है, अनादि है, क्यों? क्योंकि हम पहले ही कह चुके हैं कल के भाषण में सब कुछ अनादि है इसीलिए हमारे यहाँ हर ज्ञान का प्रारंभ शिव से होता है। या ब्रह्मा से होता है। शिवजी या ब्रह्मा से सारे ज्ञान उदय होते हैं। इसका अर्थ सीधा-सादा यह है कि कालकर्म में कोई आरंभ की बात नहीं की जा सकती। कम-से-कम मनुष्य उसे नहीं पा सकता। आपको आश्चर्य होगा कि शिवजी उनके साथ हम सब कुछ जोड़ते हैं। मैंने एक दफा पढ़ा जुए का जो खेल है वह भी शिवजी ने प्रारंभ किया। पता नहीं आपने कभी पढ़ा है या नहीं। बहुत ही रोचक कहानी है। मैं ज्यादा उसको विस्तार से नहीं कहूँगा कि शिवजी ने खुद ही। इसमें बड़ा गहरा इसका एक आयाम है, पक्ष है कि शिव जी ने जो जुए का खेल बनाया और फिर पार्वती के साथ खेला तो वह सब कुछ हार गए। सब कुछ, अपनी नंदी, अपना सब कुछ जो उनके पास था वह सब हार गए तो हारने के बाद वह अलग जाकर बैठ गए तो मेरे पास तो कुछ है नहीं। तो पार्वती ने सब कुछ जीत लिया लेकिन वह बड़ी दुखी थी। अरे, शिव को मैंने खो दिया और सब कुछ पाया तो क्या पाया। कहानी अजीब है, लंबी है इस पर ज्यादा जाने की जरूरत नहीं है। सिर्फ कहने की बात यह थी कि जो अनादि है वह क्यों अनादि है, इसलिए कि कालकर्म में हम उसका प्रारंभ नहीं जान सकते। कालकर्म में जिसका प्रारंभ नहीं है इसलिए हम उसको अनादिवासना कहते हैं। इसलिए कहते हैं कि इसी से जिजीविषा पैदा होती है, जीने की इच्छा पैदा होती है। हालाँकि हम जानते हैं कि जीने में कुछ नहीं है। फिर भी इच्छा

रहती है। तो वासनामूलक फिर स्मृतिजन्य, हमें कुछ अनुभव हुआ था वही हम फिर दोहराना चाहते हैं। क्यों दोहराना चाहते हैं ? कल्पनारचित इच्छा जो है उसमें एक कल्पना का अंश होता है। एक स्मृति का अंश होता है, अनादिवासना का अंश होता है फिर इच्छा उत्पन्न होती है लेकिन यह इच्छा तो स्वप्न को भी दिखा सकती है, दिवा स्वप्न को जगा सकती है। यह कर्म में कब परिणत होता है, कर्म में जब परिणत होता है, जब यह लगता है कि वास्तव में जो स्थिति है वह वैसी नहीं है जैसा उसे होना चाहिए। तब इच्छा हमारे यहाँ कहा है कि इच्छा से प्रयत्न होता है, प्रयत्न से चेष्टा होती है और चेष्टा से कर्म होता है। आप इसके बीच में कुछ और जोड़ सकते हैं और अगर चाहें तो, लेकिन जिस बात की ओर में आपका ध्यान दिलाने की चेष्टा कर रहा था वह यह है अभाव की सत्यता मनुष्य को कर्म में प्रेरित करती है। उस स्थिति को बदलने के लिए, उसके अनुरूप बनाने के लिए जो उसकी कल्पना में है पूर्ण रूप से नहीं, लेकिन है, जिसमें स्मृति भी है, जिसमें वासना भी है और यह सब मिलाकर आप कर्म में प्रेरित होते हैं। उस अभाव को भाव रूप में लाने के लिए और फिर वह बनता है। लेकिन जैसे ही बनता है कुछ क्षण के लिए आपको आनंद आए कि यह तस्वीर वैसी बन गई जैसे मैं बनाना चाहता था। या वह विचार का कर्म जो मैंने रखा था वह वास्तव में कुछ बात बनी है लेकिन अगर आपकी बुद्धि जीवित है, आपकी चेतना जीवित है तो वह फिर लौटती है, कहती है, नहीं कुछ रह गया। फिर आप प्रवृत्त होते हैं लिखने में, चाहे कविता लिखते हैं, कहानी लिखते हैं, चित्र बनाते हैं या दार्शनिक हैं तो विचार करते हैं, बार-बार लौटते हैं फिर आगे कुछ और करते हैं। यह जो अनंत प्रक्रिया है, यह जो अनंत साधना है, इस साधना के जिसमें हम कर्म में प्रवृत्त होते हैं उसके कुछ आयाम अजीब हैं। वस्तुस्थिति तो होती है, उसमें, हम परिवर्तन करना चाहते हैं पर वह चेतना जो इच्छा से ग्रसित है, जिसमें कल्पना है, जिसमें स्मृति है उसमें वह चेतना कैसी है। देखिए, हम सब लोगों को पता है हम कितना ही कहें, कितना ही बनें, कितना ही करें, कितना ही लिखें लेकिन जो हमारी चेतना है वह लोभ से, मोह से, ईर्षा से

ग्रसित है। उसमें काम है, क्रोध है। कम-ज्यादा सब में और हम परेशान कि यह हमारी चेतना है, यह शुद्ध क्यों नहीं होती, हमें ईर्ष्या क्यों होती है, हमें मोह क्यों होता है। हम कहते हैं नहीं होना चाहिए। भाषण देते हैं, लिखते हैं पर हमको पता है कि यह लिखना बेकार है, यह कहना बेकार है क्योंकि हममें, हमारी चेतना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। यह आप देखिए अगर भारतीय परंपरा की आप कोई विशेषता ढूँढ़ना चाहते हैं, चितंन की परंपरा में वह चिंतन इधर मुढ़ता है और कहता है कि चेतना वैसी नहीं है जैसी उसे होनी चाहिए। ऐसा नहीं है, वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है जैसी उसे होनी चाहिए। यह अभाव तो मेरी चेतना में स्वयं बैठा हुआ है। यह जो भाव रूप चेतना है, यह वास्तव में सत्य नहीं है, क्योंकि सत्य ऐसा नहीं होता, इतना खराब नहीं हो सकता तो इसको कैसे पलटे। इसके विषय में अनेक चर्चाएँ हैं, चिंताएँ हैं लेकिन जब कोई चेतना की ओर देखता है, और आत्मचेतना प्राणी है तो वह चेतना में बहुत चीजें पाते हैं लेकिन एक चीज जिस पर ध्यान दिया ही नहीं गया है कि हमारी चेतना में एक विषयोन्मुख हो सकती है, रहती है, सहज प्रवृत्ति, लेकिन वह विष्य से हट भी सकती है। अंग्रेजी में इसको अटेंशन कहते हैं। हम आँख बंद कर लें, दुनिया बंद हो जाती है। कान बंद कर लें दुनिया बंद हो सकती है, कितना आसान है दुनिया को बंद करना, लेकिन अंदर का विचार बंद करना बहुत कठिन है, वह चलता रहता है। लेकिन हमको यह पता है कि हम हट सकती हैं, चेतना में एक शक्ति है कि वह बाहर जा सकते है और बाहर से लौट सकती है। अपने से पीछे लौट सकती है, अपनी चिंतन प्रक्रिया से लौट सकती है। आप शांत कर सकते हैं लेकिन कर नहीं पाते लेकिन महसूस करते हैं। आप देखिए कि जब मनुष्य की चेतना इस बात को देखती है तब उसके सामने दो प्रकार के कर्म और धर्म उपस्थित होते हैं। एक यह कि जो बाहर की वस्तुस्थितियाँ हैं उनमें परिवर्तन आना चाहिए। उसमें भी देखिए कि परिवर्तन कहाँ है। अनेक वस्तुस्थितियाँ होती हैं लेकिन जो प्रधान है वह मेरे अन्य से संबंध है। अगर मेरा किसी से संबंध अच्छा है, स्नेहपूर्ण है तो स्वर्ग है। अगर यह बदल जाता है तो नरक है। ब्राउनी

की लाइन मुझे याद आती है, मुझे पसंद भी आती है—ए लिटिल मोर एंड हाऊ मच इट इज, ए लिटिल लैस एंड ह्वाट वर्ल्डर्स ए वे। कितनी दूर जरा सी नजर पलटी तो फिर क्या होता है। नजर मिली तो क्या हो गया। सबको पता है। लेकिन हमारा आपसे संबंध क्यों इस प्रकार का नहीं है जो होना चाहिए। यह जो मानवीय संबंध है और आपका अपनी चेतना से संबंध है इसके विषय में जो विषद् चिंतन हुआ है और जो साधनाओं की बात की गई है उसकी चर्चा तो पूर्णरूप में नहीं की जा सकती, लेकिन कुछ हद तक जरूर करनी चाहिए।

मैं आपके सामने कुछ दो अन्य दिशाओं की बात करना चाहता हूँ। देखिए, हमारे यहाँ कर्म पर चिंतन ने एक दिशा ली है जो किसी भी अन्य संस्कृति में नहीं ली गई है। हम जन्म लेते हैं। किसी घर में पैदा होते है, किसी शरीर में पैदा होते हैं, यह शरीर सुंदर हो सकता है, स्वस्थ हो सकता है। हम किसी श्रीमंत के घर पैदा हो सकते हैं, हमारा शरीर रोगग्रस्त हो सकता है, हम ऐसे शरीर में लीन हो सकते हैं जो बचपन से ही, जन्म से ही रोगग्रस्त है। कोई लड़का होनहार होता है, कोई लड़की रूप लिए पैदा होती है, कोई व्यक्ति उसमें बुद्धि की प्रखरता होती है, अनेक आयाम हैं। यह भेद जो है इस भेद का आधार क्या है? भारतीय चिंतन ने यह पूछा कि इसका आधार क्या है। अब आपके सामने दो ही समस्याएँ हैं, या तो आप यह कहें कि यह सब आकस्मिक है। इसके कोई कारण नहीं है। अगर आप कोई कारण मानते हैं तो वह कारण हमारी बुद्धि को कैसे स्वीकार होगा कि ऐसा क्यों हुआ है कि मुझे ऐसा शरीर मिला है। आखिर यह अन्याय मेरे साथ क्यों है? मैं इस कुल में क्यों पैदा हुआ? आज हरेक आदमी यह सवाल पूछता है। इसका उत्तर कार्य-कारण रूप में नहीं मिल सकता। अगर संसार में ऐसी अराजकता है कि मनुष्य को ऐसे शरीर में, ऐसे मन में, ऐसी चेतना में, ऐसे घर में जन्म लेना पड़ता है जहाँ उसे अकारण यह सब मिलता है तो यह जो जगत है, वास्तव में इसको समझा जा नहीं सकता। इसी के लिए भारतीय चिंतन में जिसको कहते हैं एक पूर्व कल्पना की गई कि वास्तव में अगर हमें इस भेद को समझना है तो हमें यह मानना होगा कि यह हमारे किए का ही फल

है। इसीलिए पूर्व जन्म की बात माननी होगी। अगर यह सब मेरे किए का फल नहीं है तो, या तो आकस्मिक है, आकस्मिक होने का अर्थ है उसे समझा ही जा नहीं सकता और या किसी ऐसे व्यक्ति की देन है जिसके सामने कोई नियम है ही नहीं, जिसको जो चाहे बाँट देता है। इसीलिए पूर्व जन्म की कल्पना करके इसको अंग्रेजी में मैंने कहा है—द डिमांड ऑफ मारेल इंटेलिजिबलिटी ऑफ द यूनीवर्स लैट टु द हाई पासेसेज टु द पास्युलेशन ऑफ पास्ट लाइफ इन द कांटेक्स्ट ऑफ विच आई केन सी लेजिटीमेटली दैट आई एलान एन रिस्पोंसिब्रल ह्वाट हैपंड टु मी। अगर हमें जगत को समझना है मारेली इंटेलीजीबल तो हमको यह मानना पड़ेगा। इसके अनेक आयाम है। इसकी कोई भी जो कल्पना करते हैं इसके फिर नतीजे होते हैं जो बड़े अजीब निकलते हैं, उसमें ज्यादा जाने की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं आपको यह बता रहा था अभाव पर चिंतन किस प्रकार, जो मूल्यों के बारे में चिंतन है, श्रेय के बारे में है, आदर्श के बारे में है उससे जुड़ा हुआ है। और इसकी दिशाएँ बाहर भी हैं, अंदर भी हैं और संबंध रूप में। यह जो संबंध की बात है इस पर अधिक विचार नहीं किया गया है लेकिन करना चाहिए, हम कर सकते हैं। हम इसको आगे ले जा सकते हैं। हम कैसे ही अपने स्वर्ग-नरक के स्रष्टा हैं। थोड़ा कुछ लौटें, कुछ और बात करें फिर जोड़ेंगे। अंगाहार की बात मैंने की। कल कुछ संस्थाओं की बात उठाई गई थी कि संस्थाओं के बगैर जो भारतीय चिंतन की परंपराएँ हैं उनकी विषय विधाएँ हैं वह कैसे आगे बढ़ सकती हैं। आपने अंगाहार की बात सुनी होगी और अग्रहार और कुछ भी सुना होगा लेकिन अंगाहार और अग्रहार का संबंध शायद किसी ने नहीं सोचा होगा। अंगाहार और अग्रहार, अग्रहार वह स्थान होता था जहाँ ब्राह्मण लोग जो होते थे उनको बसने के लिए स्थान दे दिया जाता था।

अग्रहार में चिंतन का अंगाहार बनता था। चिंतन के अंगाहार से क्या मतलब है, प्रत्यय जगत में भी वही रचना होती है जो नृत्य में होती है, जो संगीत में होती है, वहाँ हमने विचार के क्षेत्र में अंगाहार बनाना छोड़ दिया है। हम समझते हैं संगीत में राग बनता है, राग गाया जाता

है। हम समझते हैं नृत्य में मुद्राओं के द्वारा उनके मिलाने से कोई अंगाहार बनते हैं और वह अंगाहार किसी भाव को व्यक्त करते हैं और उन अनेक भावों के द्वारा किसी एक ऐसे भाव की अभिव्यक्ति होती है जो उन सबसे मिलकर बनता है। कुछ लोग उसको रस कहते हैं, लेकिन रस के पहले ऐसा भाव उत्पन्न होना चाहिए जो उन सब भावों से मिलकर बनता है। इसी प्रकर जो विचार होता है उसमें प्रत्यय जगत जो बनता है, प्रत्ययों के द्वारा एक विचार का अंगाहर बनाया जाता है। लोग साथ रहते थे उन संस्थाओं में जिनको हमने अभी एक स्थान में अंग्रहार कहा है। वहाँ बैठकर लोग चिंतन करते थे और चिंतन आपस में करते थे और मिलकर किसी एक विचार जगत की रचना करते थे। भारतीय परंपरा के बारे में बहुत कुछ गलतफहमियाँ हैं, एक गलतफहमी जिसकी ओर मैं आज इशारा करना चाहूँगा वह यह है कि क्योंकि बुद्धि के अनेक ध्यानस्थ मूर्तियाँ हैं। हमने मान लिया है कि मनुष्य की साधना अकेली थी। ध्यानास्ते ततगते मनसा...ध्यान में स्थित होकर मनुष्य उसी चरम सत्य के पास पहुँचता है। पर हम यह भूल गए हैं उन्हीं बुद्ध ने कहा : संघम शरणं गच्छामि। संघ की शरण की बात क्यों की, यह किसी ने नहीं सोचा। पर क्या बुद्ध ने ही संघ की बात की? अगर आप उपनिषद् पढ़ पाते हैं तो जनक की सभा में सब लोग आते हैं, बड़े-बड़े ऋषि आते हैं, यज्ञबल आते हैं, वार्तालाप होता है, प्रश्न पूछे जाते हैं, सभा होती थी, संघ होता था, मिलकर लोग बैठते थे, प्रश्न पूछते थे, बात करते थे और फिर एक निश्चय होता था कि नहीं, याज्ञवल्क्य जो बात कही है वही सबसे अधिक संगत है, श्रेष्ठ है और उनकी बात स्वीकार की जाती थी उस सभा में, इसका मतलब यह नहीं है कि वह सदैव के लिए स्वीकर कर लिया जाता था। आपने बौद्धों में मिलिंद के प्रश्न पढ़े होंगे। नागसेन राजा से बात करता है, पूछते हैं। राजा कहते हैं मैं तुमसे प्रश्न पूछता हूँ। उसने कहा कैसे बात करोगे, राजा होकर बात करोगे या मनुष्य होकर बात करोगे? राजा ने पूछा क्या भेद है? नागसेन कहते हैं भेद यह है कि जब हम आपस में वार्तालाप करते हैं तो सत्य की खोज करते हैं, हम एक-दूसरे का खंडन-मंडन करते हैं। हम कहते

हैं आप गलत हैं, इस पर कोई नाराज हो सकता है। पर कोई आपकी गरदन नहीं काटता। राजा से बात करोगे तो राजा को कौन कहेगा कि आप गलत बात कर रहे हैं तो उसने कहा मैं राजा होकर बात नहीं करूँगा, मनुष्य होकर बात करूँगा। लेकिन प्रश्न यह है कि सभा होती थी, सभागार होते थे जहाँ विद्वान लोग इकट्ठे होते थे, आपस में एक-दूसरे से बात करते थे और इस निष्कर्ष पर पहुँचते थे कि कुछ बातें अधिक सार्थक हैं, अधिक सत्य हैं, अधिक स्वीकार्य हैं। और फिर यह बात नहीं है एक के बाद कोई सभा होती नहीं थी। फिर कुछ वर्ष बाद फिर सभा होती थी। लोग एक-दूसरे से पूछते थे तुमने इसमें क्या पाया और फिर परिष्कार होता था, नई बात मानी जाती थी। आप लोग भूलते हैं हमारे ग्रंथों का नाम संहिता है। संहिता का अर्थ ही यह होता है लेटर ट्रेडीशन ऑफ नालिज। संहिता का मतलब है जो इकट्ठा किया गया है। किसी ने इकट्ठा किया है, चरक संहिता है, उसके एडीशंस थे। संहिता का अर्थ यह होता है, लोग मिलते हैं और जिज्ञासु लोग हैं, एक साथ खोज कर रहे हैं आपस में एक-दूसरे की सुन रहे हैं, कह रहे हैं और फिर कुछ निष्कर्ष निकलता है। यह एक अनवरत प्रक्रिया थी। तो जो अग्रहार से अंगाहार की बात मैं कह रहा था, जो सभाओं में होता था, राजा की सभाओं में होता था, विद्वानों की सभाओं में होता था, हमेशा जब आप देखिए, जो हमारे यहाँ जितने भी तीर्थ हैं, कुंभ होता था, जहाँ हर तीर्थ पर हर वर्ष कुछ होता है वहाँ विद्वान लोग आते हैं, साधु लोग भी आते हैं, बात करते हैं आपस में। ऐसा कुछ नहीं था कि हमारे यहाँ केवल ध्यानावस्ये...यह भी होता था लेकिन उसकी भी चर्चा होती थी। कहने का अर्थ यह है कि आप परंपरा में देखिए, मैंने जो अंगाहार की बात अग्रहार के संबंध में की है उससे एक गहरा तात्पर्य है, वह यह है कि विचार में उसी प्रकार से हम अवयवी बनाते हैं जिस प्रकार से अन्य कला की विधियों में करते हैं, विधाओं में करते हैं। इसका अर्थ क्या है? मैं फिर थोड़ा लौटता हूँ कल की बात पर, अर्थ की बात पर। कविता में अर्थ कैसा होता है? हमारे यहाँ अलंकार शास्त्र पर इतनी चर्चा हुई है। आज उसको बेकार माना जाता है कि कितने अलंकार होते हैं—60, 70 शब्द का अलंकार होता है, अर्थ का

अलंकार होता है, फिर कहा गया ध्वनि होती है, फिर कहा गया वक्रोक्ति होती है और बहुत सारी बातें कही गईं। चित्रकारी की चर्चा की गई, लेकिन यही बात, अब जरा सोचिए जो विचार का क्षेत्र है उसमें भी ध्वनि होती है, उसमें भी अलंकार होता है। यह बात हमारी परंपरा में नहीं कही गई है लेकिन कही जा सकती है। पश्चिम का जो विचारक है वह हमारी विचार परंपरा को देखता है तो उसमें वह क्या देखता है, उसमें वह शब्द को देखता है। वह शब्द के स्रोत को जानना चाहता है, वह उस अर्थ को देखता है जो प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित हे सकता है लेकिन उस अर्थ को नहीं देखता जो अप्रत्यक्ष है, जिसकी ध्वनि मात्र है, विचार में ध्वनि की बात नहीं कही है लेकिन मैं आपके सामने करना चाहूँगा। विचर में हम क्या करते हैं, जिस प्रकार साहित्य में हम अनेक अलग-अलग परिप्रेक्ष्यों से बिंब लाकर मिलाते हैं और एकदम कुछ नई बात पैदा होती है वह बात जिसको सपोर्ट कहकर कुछ कहने की चेष्टा की गई है, पकड़ने की चेष्टा की गई है लेकिन सपोर्ट जो है वह केवल साहित्य में नहीं होती, कविता में नहीं होती, सपोर्ट विचार में होता है। विचार में सपोर्ट कैसा होता है जो नया विचारक उत्पन्न होता है वह कैसे होता है, वैसे ही होता है, अनेकानेक, अलग-अलग पड़े हुए विभिन्न प्रत्ययों को साथ लेता है और एकदम इस प्रकार से मिलाता है कि उनमें जादू पैदा करता है और आप मुग्ध हो जाते हैं, एक नया विचार उत्पन्न होता है। लेकिन इस विचार के पीछे केवल यही नहीं बल्कि वह एक नई ध्वनि को उत्पन्न करता है। हमारे यहाँ प्रतिध्वनि की बात है लेकिन प्रतिध्वनि से भी अलग एक अंतर ध्वनि की बात है। और वह ध्वनि, एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को जन्म देती है इसलिए मैंने कल कहा था आप शेर को बार-बार दोहराते हैं, कविता को बार-बार पढ़ते हैं लेकिन विचार के क्षेत्र को दोहराना इस प्रकार से नहीं होता अन्य प्रकार से होता है, आप कांट हो, शंकर हो, नागार्जुन हो, कोई भी बड़ा विचारक है आप उसके पास बार-बार जाते हैं और जब भी जाते हैं कुछ नया मिलता है, क्यों मिलता है? क्योंकि आपमें भी तबदीली हुई है। इसलिए आप नई चीज देखते हैं लेकिन इसके अलावा आप उन

शब्दों में नया अर्थ पाते हैं। उन अर्थों में नई ध्वनि पाते हैं और ध्वनि के अलावा मैं कहूँ जिस प्रकार अधिक ध्यान नहीं दिया गया है, उसके अलावा एक आप दिशा पाते हैं कि इसको इस दिशा में बढ़ाया जा सकता है। यह संपूर्ण नहीं है क्योंकि जो संपूर्ण है वह तो पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो ही नहीं सकता। वह आपको निमंत्रण देता है, वह विचार कहता है देखो, इसे आगे बढ़ाओ। खाली ध्वनि तक सीमित मत रखो। केवल आत्मालीन मत हो, बाहर मुड़ो, कुछ बनाओ। अब यह जो विचार का क्षेत्र है जब यह कर्म की ओर देखते हैं तो एक कर्म की भी अनंत: पाते हैं। कर्म के बारे में जो हमारे यहाँ विचार हुआ है उसमें एक बात है कर्मबंधन का कारण होता है, क्यों होता है? क्योंकि कर्मकाल में होता है। कर्म कार्यकारण भाव को लिए होता है। कर्म में किसी फल की प्राप्ति की बात होती है, प्रयोजन होता है। हम बनते हैं इससे भी गहरा बंधन जो है काल का बंधन, कार्यकारण का बंधन उसकी चर्चा हमारे यहाँ नहीं की गई है। मैंने कहा नए आयम, नई दिशाएँ, मैं बार-बार इन बातों को दोहराता हूँ कि इन विचारों को बहुत कुछ आगे आज के परिप्रेक्ष्य में बढ़ाया जा सकता है। देखिए, कर्म का बंधन यह होता है, ऐसे बहुत कम कर्म हैं जिसमें आप फल की प्राप्ति अपने आपसे कर सकते हैं। आपको पराश्रित होना पड़ता है, कर्म के क्षेत्र में जैसे ही आप उतरते हैं आप पराश्रित हैं। दूसरों से मिलकर काम करना पड़ता है। अगर दूसरे सहायता न करें तो आप कार्य नहीं कर सकते। दूसरों की सहायता कैसे लेंगे? भय से, लोभ से, कैसे लेंगे? कभी-कभी अपनी मर्जी से भी जुड़ जाते हैं, लेकिन मर्जी से जुड़ेंगे तो चले भी जाएँगे छोड़कर। कर्म के बंधन अनेक हैं। अगर फल मिल भी जाता है, साथी मिल भी जाते हैं तब भी जो बनता है वह आपको अस्वीकार होता है। आप देखें आपके खुद के हिंदुस्तान में गांधी जैसे लोग थे। उन्होंने किन सपनों को साकार करने की कोशिश की और बना क्या। जो बना है आज हम सब देख रहे हैं। रूस की क्रांति कितना बड़ा स्वप्न था मनुष्य का और उस गांधी का है क्या हुआ। मनुष्य का जो कर्म का क्षेत्र है इसके लिए आपको कहा गया कि इसमें फिर आपको कर्म करना जरूरी है, लेकिन फिर निष्काम कर्म की बात है।

बुद्धि की विफलता उतनी ही होती है जितनी कर्म की विफलता। कर्म के क्षेत्र में विफलता हमेशा रहेगी। बुद्धि के क्षेत्र में विफलता हमेशा रहेगी क्योंकि जो बनता है, जो चिंतन का विषय बनता है, उससे आप हमेशा संतुष्ट नहीं होते। अगर संतुष्ट हो जाएँ तो गाड़ी रुक जाएगी। इस कालक्रम में चाहे बुद्धि हो, चाहे भाव हो, चाहे कर्म हो, उसकी एक जो निरंतरता है वह इससे निकलती है कि जो भी प्राप्त होता है आपको बुद्धि से या आपके कर्म से या आपकी भाव साधना से वह आपको कभी भी संतुष्ट नहीं करेगा। तब, लेकिन हमारे यहाँ निष्काम कर्म की बात कही गई, निसंग बुद्धि की बात नहीं कही गई। मैं आपको आमंत्रित करता हूँ कि निसंग बुद्धि की बात नहीं कही है। मैं आपको आमंत्रण देना चाहता हूँ कि निसंग बुद्धि से परंपरा को देखिए, अपनी परंपराओं को और अन्य संस्कृतियों की परंपराओं को, उनमें भी वही निसंगता होनी चाहिए जो कर्म के संबंध में कहा गया है। थोड़ा देखिए कि कैसे बढ़ाएँ इस बात को? क्या हम निसंग भाव की बात कर सकते हैं, मैं समझता हूँ कर सकते हैं कि नहीं की गई है। निसंग भाव क्या होगा, भाव में तो होता ही है कि हम पूर्णरूप से डूब जाते हैं, पूर्णरूप से डूबते नहीं हैं तो जैसा कहा भी गया है वह है अनडूबे बूढ़े...एक प्रसिद्ध उक्ति है कि अगर आप उसमें डूबे नहीं है तो वास्तव में डूबे नहीं हैं, कुछ पाया नहीं है। फिर भी मैं कहता हूँ और हम कहते हैं जब हम किसी मनुष्य में इसको इस प्रकार से भाव में लीन देखते हैं तो हम समझते हैं कहीं कुछ गलती है। इसमें विलग होने की क्षमता होनी चाहिए तो वह निसंग भाव की प्राप्ति है। कुछ-कुछ विद्यानिवास जी ने अपनी जो कृष्ण के ऊपर किताब लिखी है उसमें कृष्ण में निसंग भाव की चर्चा की है। हालाँकि वह उनके विचार का केंद्र बिंदु नहीं है, मैं समझता हूँ कि कृष्ण के जो भाव पुरुष होने का चित्रण किया है उसमें कुछ इस तरफ इशारा जरूर है।

अब थोड़ी सी चर्चा मैं भाव की करूँगा, फिर समाप्त करूँगा। भाव से क्या सत्य की प्राप्ति हो सकती है? इस परंपरा ने यह प्रश्न उठाया और इसका उत्तर दिया कि हाँ। सत्य की प्राप्ति बुद्धि से हो सके या नहीं, कर्म से हो सके या नहीं, यह भाव से हो सकती है और

यही आपके यहाँ भक्ति की परंपरा है। भक्ति की परंपरा में इस तरह की साधना है कि हम जो चरम सत्य है उसकी प्राप्ति शुद्ध भाव की साधना से कर सकें। यह कहाँ तक सफल है यह कहना कठिन है लेकिन इसमें आपको आमंत्रण है कि भाव के अंदर एक अंतरलीन उसको कहना चाहिए आदर्श है। वह यह है कि यह भावना विषय से स्वतंत्र हो। हमारा सारा भाव जो है वह विषयाश्रित है। विषय के हम बंधन में पड़ते हैं, वह बदलता है तो हम परेशान होते हैं। हम एक ऐसी भाव स्थिति चाहते हैं कि जो विषय पर आश्रित ही न हो पर हम वह भी चाहते हैं कि हमारा जो मन है, हमारी जो चेतना है, उसकी जो मन:स्थिति है उससे भी स्वतंत्र हो। तो विषय से स्वतंत्रता पूर्णरूपेण भाव जगत की, यह एक प्रकार से गोपियों ने इसकी साधना की थी। गोपी वास्तव में कृष्ण से प्रेम नहीं करती थी, करती होती तो बहुत जल्दी जमना पार कर उनके पास पहुँच जाती। उनको विषय रूप में कृष्ण नहीं चाहिए, उनको मनुष्य रूप में कृष्ण नहीं चाहिए, देवरूप में कृष्ण नहीं चाहिए। वह उनको ऐसी मन:स्थिति चाहिए जो विषय पर आश्रित ही न हो। तो यह जो एक साधना है इसका दूसरा पक्ष है। आप जब चेतना देखते हैं—अपनी चेतना, मैंने कहा था यह पाते हैं कि यह चेतनाग्रसित है, अनेक प्रकार के दोषों से। अब आप क्या चाहते हैं इस चेतना के भाव रूप में दो आदर्श उपस्थित होते हैं और उन आदर्शों के बीच हमारी परंपरा में मनुष्य दुलायमान रहा है। एक तरफ आप शांत रस चाहते हैं और एक तरफ माधुर्य चाहते हैं, एक छोर हमारी चेतना का माधुर्य को चाहते हैं लेकिन माधुर्य में कोई दूसरा होता है। दूसरे पर आश्रिता होती है, लेकिन आप चाहते हैं, आप प्रेम से थकते हैं, आप कहते हैं यह क्या बंधन है, हम दूसरे पर आश्रित हैं। तब आप शांत चाहते हैं, शांत रस चाहते हैं, कोई नहीं है, केवल चेतना है, विषय है ही नहीं, अन्य है ही नहीं लेकिन जब शांत रस होता है तब फिर कहते हैं नहीं कुछ और होना चाहिए। फिर मधुरता की ओर आकृष्ट होते हैं। मैं समझता हूँ शांत रस और माधुर्य के बीच में चेतना अपने भावरूप की पराकाष्ठा खोजती रहती है, पाती कभी नहीं है। अब इन सब आयामों को थोड़ा छूते हुए एक चर्चा करते हुए मैं इस

भाषण को समाप्त करना चाहूँगा। अंत में केवल यही कहूँगा कि आपकी चिंतन परंपराएँ, जिनका कम-से-कम तीन हजार साल का, ढाई हजार साल का लिखित इतिहास है, उसके अनेक आयाम हैं। वह सब आयाम जो हैं भी वह पूर्ण रूप से प्रस्फुटित नहीं हुए हैं। किसी ने आपको बहका दिया है कि जो कुछ सोचना था वह सोचा जा सका, वह कुछ करना था वह किया जा चुका है। अब हमारी संस्कृति समाप्त हो चुकी है। कहानी बिलकुल इसके उलटी है। जो कुछ हुआ है, जिसके आप ऋणी हैं, वह आपसे मानता है कि मुझे आगे ले जाइए। आप अपना चयन खुद कीजिए। जिस चीज में आपको रुचि होती है, जिसमें आपकी सहज गति है और उसको अपनी क्षमता के अनुसार आगे बढ़ाइए। मैंने धर्म और नीति के संबंधों की बात नहीं की। मैंने अपने राज्य और समाज चिंतन की बात नहीं की, कर सकता या इसमें बहुत कुछ है। आप सोचिए कि हमारे यहाँ यह माना गया है कि राजा प्रजा के पाप-पुण्य के पाँच या छह अंश का भागी क्यों होता है। इसको आगे बढ़ाइए। राजा ही क्यों भागी होता है। मैं और आप एक-दूसरे के पाप-पुण्य के भागी नहीं होते हैं। क्या हम एक-दूसरे के पाप-पुण्य के कारण नहीं हैं? क्या मैं कभी अपने से पूछता हूँ कि मैं आपको पाप की प्रवृत्ति में लगाता हूँ या पुण्य की प्रवृत्ति में। यही नहीं, अनेकानेक अन्य आयाम हैं हमारे यहाँ, हर क्षेत्र में स्थूल और सूक्ष्म का भेद किया गया है। हमारे यहाँ राजसिक, तामसिक और सात्विक का भेद किया गया है। समाज सात्विक, तामसिक, राजसिक है। राज्य तामसिक है, इसकी चर्चा की गई है। इनको आगे बढ़ाने की जरूरत है। हर क्षेत्र में हम यह सवाल पूछ सकते हैं कि स्थूल स्तर क्या है? सूक्ष्म स्तर क्या है? सूक्ष्म के अन्य स्तर क्या हैं। हम आज यह सवाल पूछते हैं कि यह सात्विक है, राजसिक है या तामसिक है। हम यह सवाल पूछ सकते हैं यह कोटियाँ परिपूर्ण हैं? लेकिन हम यह पूछते नहीं हैं। अनेक आयाम हैं, अनेक दिशाएँ हैं। इतना खुलकर चलिए कि मजा लीजिए। थैंक यू।

प्रश्न : आपने जहाँ स्थूल और सूक्ष्म की बात कही है उस स्थूल और सूक्ष्म के कारण क्या हैं?

डॉ. दयाकृष्ण : बहुत अच्छा है कि आप जोड़ रहे हैं। इससे बढ़िया बात क्या हो सकती है?

डॉ. विद्यानिवास मिश्र : दया भाई के ऐसे विचारोत्तेजक और आगे ले जानेवाले वक्तव्य के बाद कुछ कहने को शेष नहीं रहता। लेकिन अगर न कहूँ तो उनकी बात का खंडन होगा। क्योंकि उन्होंने आमंत्रित किया है कि रास्ता यहाँ रुक नहीं गया है। यह गली का अंधा मोड़ नहीं है। राज्य खुला हुआ है। हमारी चिंतन परंपरा एक खुला हुआ वृत्त है। जिसमें और वृत्त बनाने की अपने आप एक परंपरा निहित है। परंपरा के लिए शब्द हमारे यहाँ आमनायिकी भी है। जिसका एक अर्थ है जहाँ तक नापा गया है, दूसरा अर्थ है, जहाँ तक नापा जा सकता है और उसके बारे में अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में चार श्लोक लिखे हैं। एक तरफ से जिसमें परंपरा की भी व्याख्या है। उन्होंने कहाँ है जैसे हम कोई पुल बनाते हैं तो एक ठाट तैयार करते हैं, जिस पर चढ़कर के थवई कुछ बनाता है, कुछ जोड़ता है, फिर जब पुल बन जाता है तो यह ठाट हटा लिया जाता है फिर जब नया पुल बनाना होता है तो यह ठाट काम में नहीं आता और फिर नया ठाट की जरूरत होती है। यह ठाट बेकार नहीं है, हटा लिया जाता है इसलिए बेकार नहीं है। ठाट बनाने की बात बेकार नहीं है। यद्यपि यह पहले से सिद्ध है, पूर्व सिद्ध है, फिर नया परिवर्तन क्यों करते हैं? परिवर्तन इसलिए करते हैं कि अगर परिवर्तन न करें तो उस आकार को हम समझ नहीं सकते। एक आकार को तिरोहित करते हैं फिर दूसरा आकार बनता है। जिस ओर दया जी ने इशारा किया, एक शून्य का अंतराल आता है, जिसके लिए वेदों में भी शब्द है विरेचन, अतिरीचत: इसके आगे और इसके आगे। इसके आगे जाने का अर्थ होता है कि पहले जो है उसको बिलकुल मिटा दो। देखने में लगेगा कि आत्मनिषेध है, अपना खंडन है। यह अपना खंडन नहीं है। अपनी सीमा का खंडन है। अपनी इयत्ता इतनी ही है इसका खंडन है नहीं, इतना नहीं है। इसलिए जो रचना होती है वह यह मानकर के विचार के क्षेत्र में, कला के क्षेत्र में, साहित्य का क्षेत्र में, किसी भी क्षेत्र में रचना होती है वह इस विरेचन, इस शून्यन की प्रक्रिया की बात होती है। शून्यन की

प्रक्रिया उसके अंतराल में आना-ही-आना चाहिए। शून्य होना क्या है? मौली साधना में हम लोग प्रतिदिन यह कहते हैं कि सूक्ष्म शरीर को सुखाता है, जलाता है, नष्ट करता हूँ फिर उसे सींचता है, फिर नए शरीर को उत्पन्न करता हूँ। उस नए शरीर से फिर ग्रहण करता है, सामरस भाव को ग्रहण करता है। निरंतर इसकी भावना करने का प्रयोजन क्या है? यह आत्मविवेचन और इसके बोधों ने कहा अकिंचन आवश्यक है। इस परंपरा की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें अपने आप आगे जाने की बात है। शायद परंपरा शब्द में भी निहित है और शायद संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है जिसमें श्रेष्ठ और दूसरे के लिए एक ही शब्द है। पर का अर्थ श्रेष्ठ भी है और पर का अर्थ दूसरा भी है। अर्थात् दूसरे में अपने को पहचानो। अगर दूसरे में अपने को नहीं पहचान सकते हो तो तुम श्रेष्ठ नहीं हो। अपनी श्रेष्ठता के लिए दूसरे में अपनी पहचान प्राप्त करना, अपनी प्रतिज्ञा प्राप्त करना, यह ज्ञान का भी लक्षण है, यह कर्म का भी लक्षण है और यह भाव का भी लक्षण है। मैं यही जानता हूँ कि उद्देश्य की जहाँ तक बात है इस परंपरा का उद्देश्य क्या है, कुछ भी नहीं है सिवाय इसके कि अभी सीमाएँ पार नहीं हुईं। अपनी सीमा को पहचानते रहना यही उद्देश्य है। आदमी अपनी सीमा को पहचानता है तो असीमता के एक नए आयाम को छूने के लिए व्याकुल होता है। वह व्याकुलता सर्जनशीलता में भी आती है, वह प्रतिफलित होती है, वह व्याकुलता, विचार के क्षेत्र में नए आयाम के सूत्र करने में होती है। कभी भी कोई ऐसा समय नहीं आएगा जब उत्तरोत्तर कुछ-न-कुछ नए आयाम नहीं आएँगे। नए आयामों का आना कभी भी रुक सकता है। हमारे यहाँ शास्त्रार्थ होते थे, जैसा कि भाई जी ने बताया कि परिष्कार होता था। एक लक्ष्ण किया और कहा कि यह दोष है। दया भाई ने मन के लक्षण में कहा, स्मृतिजन्य। मैं परिष्कार करूँगा कि केवल अपनी स्मृति से जन्य नहीं है, जो विश्व मन की स्मृति है उससे है। जिसे आज कह सकते हैं जातीय स्मृति से जन्य है। कहीं से उसका अंश दान होता है इसीलिए अपनी स्मृति से आदमी नहीं परिचालित होता है। कहीं-न-कहीं वासना एक पूरे समुदाय की स्मृति की होती

ही है तो इसी तरह से निरंतर परिष्कार करने की बात की जाती है। और इससे बाल की खाल निकालना नहीं सोचते हैं। सोचते हैं यह भाव का व्यापार है। यह खंडन करने की वृत्ति इसलिए नहीं है कि दूसरे को पराजित करे। दूसरे को नीचा दिखाए इसलिए है कि हम समझे। जो भी विचार आए उन विचारों में अपने को ढाल करके हम समझे उसके और आगे जा नहीं सकते हैं या जा सकते हैं यह पहचान है। तो इसमें कहीं भी जय-पराजय की बात नहीं है। मैं छोटी सी कहानी सुनना चाहता हूँ। प्रासंगिक नहीं है। इसी शताब्दी के अच्छा प्रखर पंडित थे जिन्होंने मीमांसा के ग्रंथों में गीता पर भाष्य लिखा। भाष्य लिखा, महाउपाध्याय हरिहर द्विवेदी। वह मिथिला में गए। उन्होंने वहाँ बच्चा झा—न्याय के बड़े पंडित थे—से शास्त्रार्थ किया। बच्चा झा कुछ देर के लिए चुप हो गए। तो वहाँ के पंडित शोर मचाने लगे। जब देखा बहुत शोर हो रहा है, बात आगे नहीं बढ़ रही है तो उन्होंने एक श्लोक वहीं पर तत्काल बनाकर सुना दिया। नायम कामयते निषार करिकान नकीली कल्पाम कृपाम। यह आदमी रुपए के लिए नहीं आया, राजा से मुझे विदाई नहीं लेनी है, मुझे ऐसी नपुंसक कृपा भी नहीं चाहिए—नकलीय कल्पाम कृपाय नकपासी पदोन्नति। मुझे किसी पद की उन्नति नहीं चाहिए। यह व्याख्यिय न जानयत परम, कुछ नहीं चाहिए। चाहिए क्या...

मैं यह चाहता हूँ आपस में समान प्रेम का जो व्यवहार होता है, उसके जो भी कार्य होते हैं, प्रचार होते हैं, उन प्रचारों से युक्त जो हमारा कार्य हो सकता है, अपने पहले के लोगों के प्रति जो विनक भाव हो सकता है और वही विनक भाव जिस रूप में हमारी संस्कृति द्वारा हमारी सुचारित के द्वारा व्यक्त हो सकता है, उससे उनका हम प्रचार करें। हम उनकी बात करके, उनके बारे में बात करके और अपनी सुचारित से बात करके अर्थात् क्रियान्वित करके बात करते हैं, उसी से उनका आगे प्रचार होता है। यह अनुभव होता है लोगों को कि मैं अपनी बात नहीं कर रहा हूँ। मुझमें सब बात समाई हुई है, मैं बहुत ही छोटा हूँ। पंडित हरिहर रुकपाल द्विवेदी इस शताब्दी के विद्वान हुए हैं तो उनके इस विनय भावपूर्ण श्लोक में परंपरा का प्रयोजन निहित

है। चाहते क्या हैं ? यह नहीं चाहते कि उनकी बात छोटी हो जाए। यह चाहते हैं कि हम समझें कि यह बात छोटी है, इसके आगे सोचना चाहिए और हम जब सोचेंगे तो उसमें लोगों को सम्मिलित करना चाहते हैं, अकेला नहीं सोचना चाहते हैं, सब के साथ जुड़कर सोचना चाहते हैं। इसलिए उसमें निहित है कि अकेला हमारा योगदान नहीं है, इसमें योगदान उन सबका है जिन्होंने सोचा है, जिन्होंने सोचने की दिशा दी है, उनका भी है जिन्होंने सुना है और बड़े प्रेम से सुना है, जिन्होंने संशय किया है और बड़े मन से संशय किया है, संशय के लिए संशय नहीं किया, संशय के लिए संशय किया है, प्रश्न के लिए प्रश्न किया नहीं है, परिप्रश्न किया है जिसके लिए श्रीकृष्ण ने गीता में आमंत्रण दिया है—तदविधि...

तीनों तत्त्वों की ओर आकृष्ट किया है। पहले एक परिपाद होना चाहिए, विनम्र भाव होना चाहिए, अपनी परंपरा के प्रति कृतज्ञता होनी चाहिए कि यह दिया गया है, उसके बाद परिप्रश्न होना चाहिए, प्रश्न नहीं, परिप्रश्न। उसके बारे में तरह-तरह से प्रश्न होने चाहिए। उसके चारों ओर जाकर के, उसको घेर करके प्रश्न होना चाहिए और उन प्रश्नों के बाद फिर सेवा होनी चाहिए। सेवा का अर्थ कुछ नहीं होता सिवाय इसके कि उस पर आचरण करना, उससे जीवन पद्धति का नया निर्माण करना, यही सेवा है। ब्रजभूमि में जहाँ पर कुंज है वहाँ पर जो भी कूड़ा-करकट है उसको साफ करना, भगवान की सेवा कहा जाता है। यही सेवा है कि हमारा योगदान इसमें क्या होता है। कौन चीज हम अलग कर रहे हैं, कौन चीज हम ऐसा कर रहे हैं, उससे प्रकट हुआ है, उसका स्वाभाविक रूप आ रहा है, उसका सहज रूप आ रहा है, हम कुछ पाते नहीं हैं, कुछ है उसको देखते हैं और इसीलिए आवरण इस परंपरा में, ज्ञान में, भाव में बाधक नहीं है, आवरण एक आमंत्रण है। एक-एक आवरण हटाते जाइए और आवरण को समझते जाइए, आवरण की सार्थकता समझते जाइए, आवरण की सार्थकता समझें जो आवरण को जानते भी हैं तो यह जानना अधूरा होता है। इसलिए जैसा कि दया भाई ने कहा मैं तो उसमें कुछ भी इस पर टीका-टिप्पणी नहीं करना चाहता क्योंकि हमारी बात

उन्होंने की है। मैं तो केवल जोड़ना चाहता हूँ, उनकी बात के आगे बढ़ाना चाहता हूँ कि भक्ति जिसकी चर्चा उन्होंने सबसे अंत में की, कहा कि भक्ति के आगे भी जा सकते हैं। भक्ति के आगे जाने की बात भक्ति में निहित है। वह यह है कि हमें केवल चाह चाहिए, न तो हमें वैकुंठ चाहिए, न हरि का द्वार चाहिए, न हरि चाहिए, हरि की चाह चाहिए। अनुभुज प्यास चाहिए। ऐसी अतृप्त इच्छा चाहिए। हमें बहुत ही विसंगत लगता है इच्छाओं से मुक्ति, मुक्ति मानी जाती है लेकिन इच्छा चाहिए। अकेली एक इच्छा चाहिए। किसी प्रकार की दूसरी अभिलाषा नहीं चाहिए, दूसरी इच्छा नहीं चाहिए, एक इच्छा चाहिए, एक धारावाहिनी इच्छा चाहिए और उस धारा में स्वयं को ढालना चाहिए। हम केवल इच्छा रह जाए, न व्यक्ति, न व्यक्ति के विषय, न इच्छा के विषय, केवल इच्छा रह जाए। यह इसका एक आगे का रूप है। क्या वहीं रुकेगी भक्ति ? मनुष्य, क्या वहीं रुकेगी चेतना, ऐसा नहीं कह सकता। रुकने की बात नहीं कर सकते। आज जो सूक्ष्म है कल स्थूल हो ही जाता है। आज जो अनंत दिखता है, आज जिसको हम अनंत कह रहे हैं कल शांत हो जाता है। उसके आगे फिर अनंत की बात सोचनी पड़ती है और फिर ऐसा न हो तो मनुष्य व्यर्थ हो जाए और मनुष्य ही नहीं पूरी सृष्टि व्यर्थ हो जाए क्योंकि—पूरी सृष्टि जिससे रचित है वह है इच्छा, हमें दूसरे में अपने को पाना। धन्यवाद।

सुश्री इला : जब वत्सल निधि की ओर से डॉ. दयाकृष्ण जी को इन व्याख्यानों को देने के लिए आमंत्रित किया गया था तो मुझे अंदाजा नहीं था कि कई निजी कारणों से मुझे पूरा कार्यक्रम रद्द करना पड़ जाएगा। दया भाई ने जितने सहज भाव से व्याख्यान देना स्वीकार किया था उतने ही सहज भाव से उनका न होना भी स्वीकार किया। पर फिर मैंने जब उनसे पुनः अनुरोध किया, बाधा तो है किंतु यह व्याख्यान पुनः आवाहित करके दे ही डाले जाएँ तो दया जी ने मेरी विपत्ति को समझते हुए मान लिया। मैं उनकी बहुत आभारी हूँ। डॉ. विद्यानिवास जी की भी जो अपने अन्य कार्यक्रम इस कार्यक्रम के रद्द हो जाने के बाद बना चुके थे, वे भी उन्हें छोड़कर बनारस से आ

गए। निर्मल वर्मा जी मान गए और डॉ. गोविंद चंद्र पांडे, सुधा जी, वेटलिस्टिड टिकट पर दिल्ली आ गए। नंद किशोर जी, निजाम साहब टिकट मिला, नहीं मिला, कैसे जोधपुर, बीकानेर से आ गए, मैं सबकी बहुत आभारी हूँ। आप सब की भी जो कल आँधी-पानी के दिन में आए और आज भी आकर इस कार्यक्रम को सफल बनाया। अब कल 11 बजे इसी स्थान पर विचार गोष्ठी के लिए आप सबका आमंत्रण है, आइएगा। नमस्कार।

11-12-97

प्रश्न : शायद 19वीं शताब्दी तक अंग्रेजों ने जो कुछ भी नरसंहार किया उसके बावजूद मैं समझता हूँ 40-50 करोड़ के करीब इस देश की आबादी रही होगी कास्टेंटली। काफी लोग 200 साल में मारे गए। अब जो यह 100 करोड़ लोग हो गए। अगर यह सिंचित कर्म पूरे हिंदू दर्शन के सामने पूर्व जन्म सिद्धांत को चुनौती है तो इस सिद्धांत का कैसे विश्लेषण करें, कैसे इसको आगे बढ़ाएँ, कैसे इसको एक्सटेंड करें कि यह जो बढ़ी हुई आबादी है इसको इस सिद्धांत के अंतर्गत एक्सप्लेन किया जा सके तो यहाँ पांडे जी हैं और विद्वान लोग बैठे हैं। इस पर अगर कुछ हम लोग थोड़ी सी यहाँ से चर्चा शुरू करके आगे बढ़ा सकें तो मेरी खुद समझ में नहीं आता इस बढ़ी हुई आबादी को पूर्व जन्म सिद्धांत में कैसे माना जाए और कैसे उसको एक्सप्लेन किया जाए?

प्रश्न : यह आपके पहले भाषण से संबंधित है। पहले भाषण में आपने कहा कि भारतीय चिंतन परंपरा या भारतीय ज्ञान या कोई भी ज्ञान निश्रेयस के बिना नहीं हो सकता। हरेक भारतीय ज्ञान का या हरेक भारतीय चिंतन का एक निश्रेयस है तो क्या यह कहा जा सकता है कि भारतीय परंपरा में नालिज फार ऑन नेम सेक का कांसेप्ट होगा ही नहीं या फिर आप यह कहना चाहेंगे कि निश्रेयस का होना भारतीय ज्ञान परंपरा का एक बड़ा वैशिष्ट है? इन दोनों में से कौन सी बात आप चुनना चाहेंगे? क्योंकि अगर आप पहला चुनते हैं तो हमें फिर आना पड़ेगा भारतीय चिंतन परंपरा हम किसे कहें? यदि आप दूसरी चुनते हैं यह समस्या नहीं रहेगी क्योंकि तब भारतीय चिंतन परंपरा का एक वैशिष्ट

गुण हमें पता लग जाएगा जो होगा कि उसमें केवल अपने लिए ज्ञान प्राप्त करना—उसका कोई लक्षण नहीं है। लेकिन तब नालिज फार इट्स ऑन नेम सेक होगा। क्योंकि नालिज फार इट्स ऑन नेम सेक, ह्वाटएवर वाई में से इज इंपोर्टेंट फार इट्स ऑन सेक अगेन। वाई डू वांट टु नो एंड इफ सम बाडी सेज वाई डू यू वांट टू नो आई कैन आल्वेज से वैल। आई जस्ट वांट टु नो। देयर इज नो निश्रेयस। किसी कार्य के कारण, किसी कारण के लिए, ज्ञान को नहीं प्राप्त करना चाहिए लेकिन यह सिर्फ मेरी इच्छा है मैं इसे प्राप्त करूँ। मुझे लगा आपके पहले भाषण में एक डिलेमा मुझे लगा। इसको आप किस तरह से सोल्व करेंगे।

उसमें हम मनुष्य के रूप में इतने छोटे हैं कि हमारा कोई सिगनीफिकेंस नहीं रहता। यह एक बात आमतौर पर सब लोग कह सकते हैं लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि इसकी वजह से हमारा विघटन हुआ है। हमने अपने इनसान को, अपने आपको, इस जीवन को महत्त्व नहीं दिया, इसको क्षणभंगुर माना है। माना है हालाँकि इसके विपक्ष में आप मुझे सौ किस्म की बात कह देंगे कि ऐसा हम नहीं मानते हैं लेकिन मूल रूप से असर यही हुआ है यह जीवन जीने लायक नहीं है। यह ऐसा क्यों असर हुआ है यह अगर आप बताएँ तो बड़ी कृपा होगी।

डॉ. दयाकृष्ण : इसके पहले हम आगे बढ़ें जो हमने कहने की चेष्टा की थी कि कोई सिद्धांत का प्रतिपादन करने की चेष्टा नहीं थी। वह केवल इस ओर आपका ध्यान आकर्षित करना था कि अनेक ऐसे प्रश्न, ऐसी समस्याएँ भारतीय जन परंपराओं में हैं जिनको लेकर आप आज स्वयं अपनी बुद्धि के अनुसार उन पर कुछ कर सकते हैं, आगे बढ़ा सकते हैं। पहचान कैसे हो रही है? पहचान अन्य क्षेत्रों में होती है लेकिन एक पहचान बौद्धिकता की होती है कि जब आप कहीं चर्चा करते हैं, किसकी चर्चा करते हैं। वह चर्चा की जो एक अनवरत परंपरा होती है उसमें नई चीजें उपस्थित होती हैं लेकिन हम उन्हीं की चर्चा करते हैं। तो चर्चा के विषय और विधाएँ और समस्याएँ और प्रश्न इनकी जो परंपरा है उससे थोड़ा अवगत कराना था। मेरा अपना उस

विषय में कोई विशेष मत नहीं है। अब देखिए जैसे आपका प्रश्न है। मैंने उसमें एक नई बात कहने की कोशिश की है कि पूर्वजन्म का सिद्धांत कर्म के सिद्धांत से कैसे जुड़ता है। वह समस्या उत्पन्न करता है। इस समस्या का कैसे निराकरण होगा जो इन्होंने उठाई है। जैसे कहते हैं कि चुनौती है तो चुनौती का सामना किया जाएगा। देखिए, कार्यकारण का सिद्धांत जो सब लोग स्वीकार करते हैं, जिसके अनुसार जुड़ प्रवृत्ति या सारा जो विषय है उसको हम ज्ञान प्राप्त करना कहते हैं, लेकिन जो आकस्मिकता है वह कार्यकारण सिद्धांत के विरोध में जाती है, कार्यकारण सिद्धांत स्वयं अनेक समस्याएँ उत्पन्न करता है कि अगर कार्यकारण सिद्धांत वास्तव में सही है तो सब कुछ नीयत है। अगर सब कुछ नीयत है तो फिर मनुष्य का स्वातंत्र्य क्या है। तो कहने का अर्थ यह है हम इसलिए कार्यकारण सिद्धांत को छोड़ नहीं देते और आकस्मिकता से उसका विरोध होता है या आज और भी समस्या है जिसको हम अणु का केंद्र कहते हैं, आणविक का केंद्र कहते हैं, वहाँ उस प्रकार से लागू नहीं होता जितना स्थूल जगत में लागू होता है और समाज और राज्य के क्षेत्र में उसका क्या हाल है? लेकिन फिर भी इतनी बातों के होते हुए भी हम कार्यकारण सिद्धांत को त्याग नहीं देते। बल्कि कहते हैं चलो, इसमें कुछ करेंगे। प्रोबेबिलिटी करेंगे, और कुछ करेंगे। इसीलिए जो प्रश्न है, समस्याएँ हैं, उनके सामने जो बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, उन बाधाओं को निराकरण करने में फिर नई बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, यह परंपरा विचार की बनती है। अब जैसा इन्होंने कहा मैं यह नहीं कह रहा था कि कोई ऐसी विधा नहीं है जिसका स्वयं संशय का निवारण स्वयं प्रमाण शास्त्र का प्रयोजन है। विधा का, हर क्षेत्र का, मैं इस तरफ इशारा कर रहा था। उद्योतकर ने अपनी वार्तिकी में छठी सेंचुरी में यह कहने की कोशिश की थी हर विधा का अपना निश्रेयस होता है, इस विचार में देखिए एक संभावना निहित है जिसको हमारी परंपरा ने बढ़ाया नहीं है। लेकिन हम बढ़ा सकते हैं। आपके सामने, देखिए, हमेशा समस्या होती है कि हर विधा का मनुष्य का जो पुरुषार्थ है या मनुष्य का जो श्रेय है उससे क्या संबंध है। प्रेय और श्रेय से संबंध है, आज भी जो सारा ज्ञान है

वह या तो राज्य शक्ति के संदर्भ में होता है या अर्थ व्यवस्था के संदर्भ में। धन का लाभ होता है या शक्ति का। आप सोचिए, राज्य जो है वह पूँजी देते हैं, विधा के लिए तो उनका एक स्वार्थ होता है। अमेरिका में आप देखिए इतना धन व्यय किया जाता है अन्य राज्यों के बारे में, ज्ञान प्राप्त करने के लिए, आप कभी जो पैंटेगन एस्टाबलिशमेंट की पुस्तकें निकलती हैं अन्य देशों पर उनको पढ़िए तो आपको पता होगा कितना ज्ञान, जिसको आप समझते हैं कि वह निस्वार्थ ज्ञान है, वास्तव में वह ज्ञान एक राज्य की शक्ति फैलाने के संदर्भ में लिया गया है। अंग्रेजों ने इतना ज्ञान प्राप्त किया इस देश के बारे में क्योंकि इस देश पर हुक्म करनी थी। आज हम कहते हैं गजेट से बढ़कर, गजेटियर से बढ़िया कोई चीज नहीं है इंफरमेशन के लिए, लेकिन वह इंफरमेशन क्यों तलाश की गई थी? तो यह पक्ष हमेशा होता है किसी भी चीज का कि वह उसका इंस्ट्रूमेंटल प्रयोग है या इंट्रेजिट प्रयोग। दोनों पक्ष हो सकते हैं क्योंकि यह आपकी चेतना की विधा है। आप पढ़ते क्यों हैं, इसलिए कि नौकरी मिले, इसलिए कि यश लाभ हो, इसलिए कि कुछ और हो। ऐसे भी लोग होते हैं, कम होते हैं जो केवल आनंद के लिए पढ़ते हैं। यह तलाश क्यों होती है कि मेरी खोज पहले मेरे नाम से छपे। इसमें आप देखिए, अगर वास्तव में विज्ञान में किसी भी क्षेत्र में आप ज्ञान की साधना कर रहे हैं तो आपके लिए बिलकुल यह बेकार चीज है कि मैंने पाई या किसी और ने पहले पाई। लेकिन बड़े-बड़े लोग—न्यूटन और लाई—झगड़ा करते हैं कि डिफरेंशल कैलकुलस किसने पाया। कितनी छोटी सी बात है, आम के साथ जुड़ा होता है लेकिन इन्हीं सब स्वार्थों के बीच से कुछ सिद्ध हो रहा है। कुछ खोज होती है वह निस्वार्थ है। आपने जो कहा उसके बारे में मैं यह कहना चाहूँगा कि अगर आपको ऐसा लगता है तो छोड़ दीजिए। कोई मेरा आग्रह नहीं है कि आप परंपरा को पकड़िए, जानिए, आप नहीं जानना चाहते तो मत जानिए, लेकिन मैं समझता हूँ आपने जो बात कही यह एक पश्चिमी विचारकों का आक्षेप है हमारी परंपरा में। आप जरा सोचिए कि तीन हजार साल की परंपरा जिसने इतने समृद्ध राज्य स्थापित किए, आप किसी मंदिर को देखिए, आप हम पर जाइए,

अजंता जाइए, अलोरा जाइए, आपको आश्चर्य नहीं होता कि किन लोगों ने यह चीज बनाई है। आप कोई वैसी चीज बनाकर तो दिखाइए। आपको इस बात पर आश्चर्य नहीं होता कि लोग एक पुस्तक लिखते थे और उसके 10-15-20 साल बाद उस पर टीका वृति लिखी जाती थी। कैसे लिखी जाती थी? आज आप किताब लिखते हैं, मैं किताब लिखता हूँ तो कोई पढ़ता है, कोई इस पर लिखता है? उस जमाने में जब साधन नहीं थे, फैक्स नहीं था, ट्रांसपोर्ट नहीं था तो किस प्रकार से पुस्तकें जानी जाती थीं, उनका मूल्यांकन किया जाता था, उन पर भाष्य लिखे जाते थे। मैं आपको निमंत्रण देता हूँ, कभी बैठकर कोई प्रसिद्ध ग्रंथ लीजिए और फिर देखिए कितने दिन बाद उस पर क्या लिखा गया है, कितना लिखा गया है फिर उस ग्रंथ में परिवर्तन कैसे होता है। आप देखेंगे एक ग्रंथ है उस पर एक प्रसिद्ध भाष्य लिखा जाता है, उस भाष्य पर फिर जो लिखते हैं, जब भी कोई नई चीज लिखते हैं फिर जो आगे लिखनेवाले होते हैं नई चीज पर लिखते हैं, पुरानी चीज पर नहीं लिखते। स्वतंत्र रूप में। कभी-कभी लिखते हैं। तो यह जो परंपरा, मैं आपको बताऊँ उद्यन लिखते हैं उसके बाद गंगेश लिखते हैं। गंगेश के बाद अगर रघुनाथ लिखते हैं तो रघुनाथ पर लिखा जा रहा है। गदाधर लिखते हैं तो गदाधर पर लिखा जा रहा है। इस प्रकार की जो बात है यह सब कैसे होता था। अगर वास्तव में हमारी परंपरा में कोई आकर्षण नहीं था, कोई जागृति नहीं थी, केवल लौटने की बात थी तो यह सब नहीं हो सकता था। आप इसे अलंकार शास्त्र में कभी कश्मीर के अंदर 400 साल, 300 साल में कम-से-कम 15-16 इतने बड़े आउटस्टेडिंग थिंकर्स हुए हैं, एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक छोटी सी जगह है, खूबसूरत जगह है, वहाँ इतना हुआ है तो मैं कम-से-कम आपकी बात से सहमत नहीं हूँ लेकिन अगर आपको अच्छा नहीं लगता तो छोड़ दीजिए। हम सब लोग मिलकर कुछ सोचने की कोशिश करें और हम उसे अपनी क्षमता के अनुसार आगे बढ़ाएँ तो अच्छा है। यह कहने की कोशिश थी। आप बताइए आप कैसे करेंगे, मेरी बात छोड़िए।

प्रश्न : छोड़ कैसे सकते हैं। मैं यह कह रहा हूँ हमारी जो परंपरा आपने बताई वह परंपरा में ही इस जीवन को बहुत महत्त्व दिया जाता है, ऐसी बात नहीं है कि महत्त्व नहीं देते, लेकिन महत्त्व कम दिया जाता है। दिया गया है। तो परंपरा में ही जो थिंकिंग है, वह थिंकर्ज जो है उन्होंने इस महत्त्व को इधर क्यों नहीं मोड़ा। इन्होंने ईश्वर की तरफ या परम तत्त्व की तरफ ही ज्यादा ध्यान क्यों दिया? उसमें आटोमेटिकली यह जीवन जो है थोड़ा इनसिगनीफिकेंट हो जाता है। यह नहीं कि हम जीते नहीं हैं। हमने बहुत काम किया, जी रहे हैं। लेकिन हम कितने गिर गए और कितने गिरे हुए हैं अभी भी। आप ही कह रहे थे कि हमने देखा ही नहीं है, क्यों नहीं देखा आपने? इसी दर्शन की वजह से नहीं देखा कि इतनी इनफीरियर्टी कांपलेक्स आज हमारे यहाँ है, बौद्धिकों में, हर चीज में है, क्यों है? क्योंकि हम अपने आपको नहीं देखते। हम समझते हैं जीवन जीने लायक नहीं है। जीवन तो अपना जीना ही है।

डॉ. दयाकृष्ण : देखिए, हमारी तस्वीर बनती कैसे है? जिस ओर हमारा ध्यान जाता है वैसी हमारे मन में तस्वीर बनती है, भावना बनती है। हमारी तीन हजार साल की परंपराएँ क्या हैं? इसकी हमने तस्वीर कैसे बनाई है, किसने बनाई है हमारे लिए तस्वीर? वह तस्वीर कुछ लोगों ने बनाई है। वह तस्वीर हमने, जब पढ़ते थे स्कूल में, कालिज में, हमने ग्रंथ पढ़े हैं, हमने सुना है, उससे तस्वीर बनी है। कुछ और पढ़ा है, अधिकतर अंग्रेजी में पढ़ा है। ऐसा है कुछ ही ग्रंथों को पढ़ा है तो एक तस्वीर बनती जाती है और फिर तस्वीर ऐसा लगता है कि यह स्वत: सिद्ध है। मैं यह कहने की चेष्टा कर रहा था कि यह तस्वीर ठीक नहीं है। आप देखिए कि जो बात आप कह रहे हैं उसमें दूसरी या तीसरी ईसा शताब्दी से पहले उसके आसपास समझ लीजिए, स्पष्ट रूप में लिखा गया है कि जो व्यक्ति किसी भी एक पुरुषार्थ की साधना अन्य पुरुषार्थ को छोड़कर करता है वह अपने को ही नष्ट नहीं करता दूसरों को भी नष्ट करता है। आप सोचिए, अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष के बारे में यह कहा जा रहा है कि अगर आप मोक्ष की साधना या धर्म की साधना या अर्थ या काम की साधना दूसरे पुरुषार्थों को

छोड़कर करते हैं, उनकी कास्ट पर करते हैं तो आप अपने को ही नष्ट नहीं करते, दूसरों को भी नष्ट करते हैं। यह अर्थशास्त्र में लिखा गया है। राजा के लिए कहा गया है कि जो मुमुक्ष हो उसको कभी मंत्री नहीं बनाना चाहिए। यही नहीं, धर्म में आप देखिए और मैं कहता हूँ तस्वीर बनानी है तो आपने कहाँ फोकस किया है? कोई हम बीसियों फोकस बना सकते हैं आपके लिए कि जो चिंतन है, आपने हरीशचंद्र की कथा सुनी होगी, मार्कंडे पुराण में लिखा है, दूसरे पुराणों में लिखी है, सत्यवादी हरीशचंद्र, कभी आपने सोचा है उसके पीछे, उस कहानी के पीछे एक इतना बड़ा व्यंग्य है सत्य बोलने पर कि वह धर्म का पालन करता है। धर्म का अंत कहाँ होता है? वह अपनी स्त्री को ही नहीं बेचता, अपने बच्चों को ही नहीं बेचता, अपने को ही चंडाल के पास नहीं बेचता बल्कि जब उसकी स्त्री अपने बच्चे का शव लेकर आती है वह पहचान नहीं पाता, वह कहता है कि मैं क्या मनुष्य हूँ, मैं मनुष्य ही नहीं रह गया हूँ। आप सोचिए कि इससे बड़ा व्यंग्य क्या हो सकता है धर्म पर कि धर्म का एक प्रकार से पालन जो है वह मनुष्य को मनुष्यत्व से गिराता है। तो धर्म का पालन इस प्रकार से ठीक नहीं है। इस पर क्या कामेंटरी नहीं की गई है, महाभारत में स्वयं कामेंटरी है, श्री कृष्ण कहते हैं, अर्जुन से कि अर्जुन ने व्रत किया था, युधिष्ठिर उनके बाण की निंदा करते हैं, उसके गांडीव की निंदा करते हैं। वह कहते हैं मैं तो इसको मारूँगा क्योंकि मैंने व्रत लिया है। कृष्ण कहते हैं यह व्रत क्या होता है, व्रत का यह अर्थ होता है? आप पढ़िए तो सही, यहाँ धर्म का अर्थ दूसरा लिया जाता है और स्वयं युधिष्ठिर जो धर्म के पुत्र हैं उनके सामने संजय आते हैं, धृतराष्ट्र से मैसेज लाते हैं और कहते हैं देखो, मेरा पुत्र दुर्योधन है, वह कुपुत्र है, बुरे हैं वह धर्म को नहीं जानते, उनके धर्म के प्रति निष्ठा नहीं है पर तुम तो धर्मराज हो, तुम संन्यास क्यों नहीं लेते? तुम राज्य क्यों चाहते हो, युद्ध क्यों चाहते हो? संन्यास ले लो। युधिष्ठिर कहते हैं कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जब अधर्म करना ही धर्म होता है और धर्म करना अधर्म होता है। मैं हजारों आपको मिसाल दे सकता हूँ। कहने का सिर्फ अर्थ यह है तस्वीर जो बनी है वह किसी ने बनाई है और वह तस्वीर पश्चिम

के लोगों ने बनाई है। पश्चिम के लोगों ने आपकी तस्वीर नहीं बनाई, चीन की तस्वीर बनाई है, वेस्ट की तस्वीर बनाई, सब की तस्वीर बनाई है। अपने स्वार्थ के लिए वह तस्वीर बनी। उस तस्वीर में यह नहीं है, कुछ सत्य नहीं है, क्योंकि किसी आधार पर तो तस्वीर बनती है लेकिन बयान है, फोकस है, उसका एक रूप है। तो कहने का मेरा अर्थ यह है कि थोड़ा अधिक जानिए, थोड़ा अधिक देखिए। एक ही प्रकार के ग्रंथ नहीं हैं, अगर केवल मोक्ष ग्रंथ ही देखेंगे तो एक तस्वीर बनेगी, जैसे अगर आप काम के ग्रंथ देखेंगे तो दूसरी तस्वीर बनेगी। रसिक का नोशन लीजिए, नागरिक का नोशन लीजिए और भी अनेक देखिए, मैं कह रहा था ग्रंथों को पढ़ा नहीं जाता। आप न्यायसूत्र को लीजिए। वहाँ वेद को माना गया है। वेद के बारे में जो वेद के विरोध में तर्क दिए जाते हैं, उनका खंडन करते हैं। शब्द प्रमाण को मानते हैं। सूत्र के बाद जो कहते हैं वह ऐसा है जैसे कोई नीचे से आपका फर्श, आपका कालीन खींच ले। आप गिर जाएँ तो वह कहते हैं जैसे आयुर्वेद का प्रामाण्य होता है। सोचिए, न्यायसूत्र के रचयिता क्या कह रहा है—श्रुति का प्रामाण्य, वेद का प्रामाण्य, आयुर्वेद का प्रामाण्य जैसा है। आयुर्वेद का प्रामाण्य कैसा होता है, आपको पता है, इससे फायदा नहीं होता, हर बीमारी का इलाज नहीं है। वह प्रामाणिक एक सेंस में है लेकिन उस सेंस में प्रामाणिक नहीं हो सकता जिसमें श्रुति प्राप्ति प्रामाणिक माने जाते हैं। आगे चलते हैं, शब्द के नेतृत्व का खंडन करते हैं। शब्द के अपोपौषत्व का खंडन करते हैं, सारा जो वेद के बारे में कहा गया है कि वह नित्य रूप से सिद्ध है, अपौरुष है, सबका खंडन चलते हैं। वह क्या कर रहे हैं? मैं आपको बहुत सारे उदाहरण दे सकता हूँ लेकिन कहने का अर्थ यह है थोड़ा अधिक जानिए, थोड़ा खुद पढ़िए, फिर अपना खुद मंतव्य बनाइए, अपनी तस्वीर अलग बनाइए। मैं नहीं कहता वही तस्वीर बनाइए जो मैंने बनाई है। पर कम-से-कम वह तस्वीर जो आज हमारे सब के मन में है वह तो बिलकुल गलत है, इतनी गलत है, मेरे पास खुद वह तस्वीर थी, मैं भी आपकी तरह से पढ़ा हूँ, उसी युनिवर्सिटी, कालिजों में पढ़ा हूँ, वही किताबें मैंने पढ़ी हैं, मुझे क्यों आश्चर्य हुआ जब मैंने

यह सब देखा। इसलिए कि मुझे यह लगा यह तस्वीर गलत है। नई तस्वीर बनाना मुश्किल है। मैंने कोशिश की है। आप देखिए, मैंने दो पुस्तकें लिखी हैं। जरा आप इसको देखिए, पढ़िए। एक प्रोबलमेटिक एंड कसेप्युअल स्ट्रक्चर ऑफ क्लासिकल इंडियन थाट एबाउट मैन सोसाइटी एंड पालिटी, दूसरी इंडियन फिलोसिफी इन न्यू अप्रोच। लेकिन वह मेरी तस्वीर है। आप दूसरी तस्वीर बनाइए, लेकिन बनाइए तो सही। फिर हम देखेंगे कि हमारी तस्वीर से आपकी तस्वीर में क्या साम्य है, क्या वैशम्य है, साधारण वैशम्य है, यह करने की कोशिश की थी।

प्रश्न : हमारा हिंदू सिस्टम इज बेस्ड ऑन मोस्टली साइकट्रिक, साइकट्रिक केस प्रोब्लम है। देयर इज कंटराडिक्शन इन एवरी पुराणाज। ह्वाट प्रिंसिपल इज टोल्ड इन फर्स्ट स्टेंजा, इज नोट इन देयर थर्ड स्टेंजा, इट विल अपोज इट, एंटायर कहानी रामायण या महाभारत या किसी हरिशचंद्र में, सारे राजधर्म में एक्चुअली हरिशचंद्र का राजनायक चेक करना है। वह डरकर किया है विश्वामित्र से। इट इज सैड सम। साइकट्रिक में हम लोग बोलते हैं सबसे बड़ा सेडेइज्म। साइकट्रिक पलैजर से ये लोग विश्वामित्र को यह कहते हैं, लेकिन विश्वामित्र कह रहे थे कि वह शूद्र कन्या से शादी करे। देश सारा शूद्र का था उस टाइम। सारा-का-सारा मल्लाह लोगों का था देश। भीष्म ने शादी नहीं की तो भीष्म को इन लोगों ने भगा दिया। बिकाज मल्लाह का राज था। गंगा नदी के पास सारे मल्लाह लोग थे। इन लोगों ने क्या किया कि शादी करने के बाद इन लोगों का आदमी राजा बनता और वह सही था। राजा की बात आती है तो वे लोग हराकर कब्जा कर सकते थे। जीत सकते थे। राजधर्म में ऐसा है। सीता को रावण ले गया। वह उसका राजधर्म था। उनकी टेरेटरी में ये लोग गए। वन सुंदरी को लेकर। एक दुश्मन राजा की टेरेटरी में एंटर करने से राजा का हक बनता है सारी औरत पर। ऐसा पुराण में लिखा हुआ है। सो एवरी राजा केन टेक एनी बाडी एंड हिज सुप्रीम कोर्ट नो बाडी केन एपील अगेंस्ट दिस डिसीजन। जैसा कल बताया वही रहा है सो रावण की गलती क्या थी। वन सुंदरी के साथ शादी करने के बाद राम क्षत्रिय होने से

उनकी इज्जत रखते हैं या जनक के घर जाते हैं। जाकर युद्ध करना था, फाइट करना था। फाइट करके हरा सकते थे। नहीं तो उसी जगह यह कहना है। वह कहते हैं पिता जी के वचन का पालन किया था राम ने। पिता जी ने नहीं भगाया इनको। ही हिमसेल्फ हैज गोन सो इन पर पिता जी की जिम्मेदारी कहाँ थी? पिता जी का पालन कहाँ था? राजधर्म था। राज को रखना है। तो राजधर्म कहाँ है? पुराण की बात कर रहा हूँ। सो इसमें कंटराडिक्शन है हर जगह में। माया है हर चीज में। आप आए हैं अकेले, जा रहे हैं अकेले। सुख में सब साथी, दुख में न कोई। इसी तरह से यह करके आदमी को आदमी से इसी माया, मिथ्या सिस्टम ने अलग कर दिया है। अकेले जीना, अकेले मर जाना। मतलब कि परिवार को, बाल-बच्चों को, बीबी को सबको छोड़ देना, वीमैंन राइट्स, सारा वेस्टर्न सिस्टम हर जगह दुनिया में बढ़ रहा है। उन्हीं से हम लोग हार गए। मुसलमान लोग भी आए। 1200 साल मुसलमान लोगों ने राज किया क्योंकि हम लोग इस सिस्टम के बारे में है जैसे वह धर्म का कहाँ पालन कर रहा है? जाति बना दी। इस जाति से हजारों बनाकर इट इज नो डिस्पिलन, जाति को कंट्रोल करनेवाला कोई नहीं है। वह जाति भी पहले थी। कोई भी विद्वान आदमी किसी में भी पैदा होता था उसको ब्राह्मण बनाना था। यह वर्णाश्रम सिस्टम में आया। वर्ण का मतलब कलर से है। कलर इज सब-डिवाइडिड। चातुरवर्णय...गीता में बोलते हैं कृष्ण। हट इज नोट चातुर्य वर्णम। इट इज सेवन कलर्स। इवन कृष्णा वाज आल्सो रोंग।

डॉ. दयाकृष्ण : यह सब ठीक है। लेकिन जो हम कहने की चेष्टा कर रहे हैं इसका इससे संबंध सीधा नहीं है। बात यह है अगर आपको लगता है, हम यह नहीं कह रहे हैं, पीछे जो कुछ लिखा गया था वह ठीक है। हम तो कहते हैं आप उसमें जो प्रत्यय जगत है उससे परिचित हों और उसमें जो आपको अपूर्णता लगे, जो मिथ्या लगे उसको हटाइए। धर्म का प्रत्यय लेकर आप आज के संदर्भ में क्यों नहीं सोचते?

प्रश्न : आप जैसे लोग दे डांट एलाऊ, बीजेपी हमारी संस्कृति बोलता है और कांग्रेस भी वही इस्तेमाल करती है और हरेक वही इस्तेमाल करता है।

डॉ. दयाकृष्ण : अगर आपको नहीं करना है तो मत करिए। हम यह थोड़े ही कह रहे हैं कि आप करिए, मत करिए। यह बड़ी अजीब बात है। अगर आपकी इच्छा नहीं है, रुचि नहीं है, आपकी निष्ठा नहीं है, मत करिए। जो आपकी इच्छा, रुचि, निष्ठा है वह तो करिए। हम केवल इतना कह रहे हैं जिस चीज पर धर्म के प्रत्यय पर विचार हुआ है वह विचार लंबा है, कम-से-कम उसकी ढाई हजार साल की कहानी है। आप आज उस ढाई हजार साल की कहानी को आगे बढ़ाइए। आप कहिए यह विचार गलत था। मनु कहते हैं धर्म के क्या स्रोत हैं? मीमांसा में कहा गया है धर्म का ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान से नहीं हो सकता। आज का विचारक पश्चिम का कहता है—ऑन आट स्टेटमैंट केन नोट बी डिराइव्ड फ्रीम हिज स्टेटमेंट। तो आप उसकी तारीफ करते हैं। इसमें जेमिनी के रचयिता नहीं है। मीमांसा सूत्र में कहा जाता है तो यह अल्ट्रा मॉडर्न बात नहीं है। अगर प्रत्यक्ष रूप था तो प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा जो जाना जा सकता है वह ओट नहीं दे सकता, वह यह देख सकता कि कर्तव्यता वह केवल यह कह सकता है कि यह है फिर आप देखिए धर्म का ज्ञान कैसे होता है। इसके बारे में अभी आज की 100 साल की परंपरा में मूढ़ जैसा प्रसिद्ध चिंतक कहता है गुड क्या है। गुड का ज्ञान एक इंट्यूशन से होता है, इंट्यूटिव फेकल्टी है, परसेप्शन रीजन से नहीं होता है। फिर कहते हैं आपके यहाँ क्या किया गया, श्रुति से होता है। श्रुति का क्या मतलब? फिर कहा गया कि खाली श्रुति से नहीं होता, श्रुति, स्मृति, सदाचार, आत्मतुष्टि इसका क्या अर्थ हैं? इसके बीसियों अर्थ है। आप अपना अर्थ लगाइए। श्रुति माने, कोई सुनते हैं आप, कोई कहता है ऐसा करो। बच्चे को बड़े लोग यह कहते रहते हैं कि यह करो, यह मत करो। आपके मन में यह कैसे उत्पन्न होता है कि यह करना चाहिए, यह नहीं करना चाहिए, क्योंकि किसी ने आपसे कहा है। वह क्यों कहता है क्योंकि उसने किसी और से सुना है। उसने किसी और से सुना है। यह परंपरा अनंत है, अनादि है क्योंकि इसका अर्थ हम पता नहीं लगा सकते। फिर स्मृति है। आपके मन में बैठ गया, इंटरलाइज हो गया। आज उसको सोशलाइजेशन कहते हैं, इंटरलाइजेशन कहते हैं, कल्चररेशन कहते

हैं। आपको लगता है कितना मॉडर्न है, रीसेंट है। वह सब कहता है स्मृति तो आपको लगती है दकियानूसी। क्या फर्क है? वही जो आपसे किसी ने कहा था जो उसने किसी अन्य से सुना था, जो एक परंपरा सुनने की है कि ऐसा करो, ऐसा मत करो। विधि निषेध धर्म है तो वह आपके अंदर में बैठता है, स्मृति होती है। फिर क्या, बट यू मस्ट सी एक्जेम्लीफाइड। खाली स्मृति में उसका कोई मॉडर्न होना चाहिए। आजकल आपको कहता है, बड़ी रीसेंट थिंकिंग कहता है एक्जेम्पलर्स, तो आप लुब्ध हो जाते हैं। आप कहते हैं, वाह-वाह, क्या नई चीज पैदा की है, एक्जेम्पलर होना चाहिए। वह कहता है सदाचार। वह यही कह रहा है एक्जेम्पलर होना चाहिए। हम कहते हैं धर्म भरत का भाई होता है, सीता... हमको पसंद नहीं है, सीता का आइडिया छोड़ दीजिए, द्रोपदी जैसी होनी चाहिए, नहीं होनी चाहिए, कोई और होनी चाहिए। कौन मना करता है आपको। परंपरा ने कभी किसी को स्वीकार नहीं किया। जरा देखिए मॉडल बनाए हैं। फिर वह कहता है, नहीं, लेकिन परखोगे तो अपनी आत्मतुष्टि, जब तक आपकी सेल्फ फुलफिल नहीं होगी तब तक धर्म का ज्ञान नहीं होता। फिर क्या करेंगे? आप आचरण करेंगे। फिर उस आचरण में देखेंगे वास्तव में यह धर्म है या नहीं। धर्म की खोज उतनी ही अनंत है, उससे भी ज्यादा कठिन है जो ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में होती है। तो कोई आपसे यह नहीं कह रहा कि जो चिंतन हुआ है धर्म पर या सौंदर्य बोध पर या सत्य पर या किसी भी अन्य क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में, व्यवहार के क्षेत्र में, उसको आप स्वीकार कीजिए। हम तो यह कह रहे हैं उसमें दोष निकालिए। हम तो यह कह रहे हैं उसकी अपूर्णता देखिए। हम यह कहते हैं फिर उस अपूर्णता को कैसे आप परिष्कार करेंगे?

प्रश्न : इधर एक चीज होती है साइकेट्रिक में मेंटल प्रेशर इज एक्सेस इन सर्टेन थिंग्ज। देन वी कीप इट सैपरेट वे फ्राम द पर्टीकुलर सीन स्पोज ग्रेटर एनवायरनमेंट में यह नहीं रखना। जो चीज उनको परेशान कर रही थी उस चीज को हमें दूर रखकर करना पड़ रहा है। इसलिए हिंदू पुराण में पढ़ने से पागल होते रहते हैं, देयर इज नो एंड। मैकाले सैड—एंटायर इंडियन लिटरेचर इज नोट इवन वर्थ इन हाई स्कूल

गर्ल्स स्टुडेंट्स अलमीरा। इट इज नोट एक्चुअल हाई स्कूल इट इज एलीमेंटरी स्कूल, ही वाज एब्सीलूटली रांग एट दैट टाइम, बीकाज इट डज नोट लाइक टु डिसप्लीज पीपल हीयर, सो बाल दीज पीपल हैव मेड, बीकाज आई हैव रैड आल दिस थिंग—संतता—बचपन टाइम्स से। मेरा परिवार भी संतता था। सारा पुराण मैं पढ़ रहा था। पुजारी का काम भी कर रहा था मैं। मैं तो आई.ए.एस. तक पढ़ा था। बाद में समझा यह सारा दीज फैलो धोखा देकर हम लोगों को फँसा रहे हैं। लोग इकट्ठा हो जाते हैं। इंडियन लोगों को आने नहीं देते हैं। यह एक्चुअली दिस इज बेस्ड ऑन कांसपीरेसी। दीज थिंग्ज वर मेड इन हिमाचल आर कोल्ड कंटरीज, दिस स्किललचर्स, सो कोल्ड कंटरीज दीज पीपल की जुबान पकड़ लेते हैं। वई केन नोट एक्सप्रेस।

डॉ. दयाकृष्ण : आप सब थ्योरी बनाइए, कोई मना नहीं कर रहा है। लेकिन इस बात का यहाँ जो आप कह रहे हैं कोई संबंध नहीं है। आप बीसियों थ्योरियाँ बनाइए। आपका यह थॉट क्यों उदय हुआ, किस कल्चर में हुआ, किस कोल्ड में हुआ, लेकिन इससे उसकी वैलिडिटी पर असर नहीं पड़ता। आज पश्चिम का विचार भी किसी समाज में उदय हो रहा है, लेकिन उसकी वैलिडिटी आप भी मानते हैं। आप तो कोल्ड कंटरी में नहीं रहते, फिर इंगलैंड की थिकिंग आप क्यों सुनते हैं। पांडे जी आप कहिए।

प्रश्न : देयर इज ब्राड आउटलुक इन इंगलैंड, से यूरोप, रशियन सिस्टम में एक ही कलर के ये लोग ज्यादा पसंद करते हैं। लेकिन ब्लैक को हेट्ड से नहीं देखते हैं। हैड्रेड बन गया।

प्रश्न : मैं यहाँ तक समझा हूँ। आपकी मुख्य-मुख्य बात थी जो आप बार-बार कहते हैं वह यह है परंपरा समृद्ध है, बहुमुखी है और उसके ज्ञान को स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ाना चाहिए। यानी स्वतंत्र चिंतन की आवश्यकता है लेकिन उसका प्रारंभ परंपरा के अनुशीलन से हो तो ठीक होगा, जिसमें पुरानी धरोहर भी बनी रहेगी, आगे बढ़ेगी, उसका उपयोग होगा, नवीनता भी आएगी। मैं इसमें आपका मुख्य प्रतिपाद समझता हूँ। मैं इससे पूरी तरह से सहमत हूँ। इस कार्य के होने में दो बड़ी बाधाएँ हैं, विभिन्न प्रकार की। एक ओर तो वे लोग हैं जो परंपरा

का अनुशीलन करते हैं, पारंपरिक ज्ञान का, कुछ क्षेत्रों में। किंतु वह यह मानकर चलते हैं कि परंपरा में जिस तरह की बातें हैं या कम-से-कम जो आसन्न परंपराएँ हैं उनमें जो बातें कही जाती रही हैं उन्हीं में परिष्कार करना सही बात है। मैं इसको दोष इसलिए मानता हूँ, मुझे विश्वास है कि अधिकांश हमारी परंपराएँ अपने मूल से बहुत आपस में विच्छिन्न है। परंपरा में परिष्कार तो जरूर होता है लेकिन उसके साथ-साथ बड़ी प्रासंगिक बन जाती है, मूल से हट जाती है। उनमें तथ्य की दृष्टि से अपकर्श भी होता है। यह बात भी जाननी जरूरी है। मुझे इसमें स्वयं विश्वास है कि बहुत सी परंपराओं का मूल रूप में है, उसमें निरंतर प्रेरणाएँ हैं। उसके प्रकाश में परंपरा का अध्ययन होना चाहिए। यह बात ठीक है जो आप कहते हैं, जो कम-से-कम आपकी बात में अक्षिप्त कि परंपरा का निर्गली बहुलार्थ लेना पड़ेगा। उसको आजकल शुंभ चिंतन से आगे बढ़ाया जा सकता है। यह तो इसमें दक्षिण के क्षेत्र में यह बात उतनी कठिन नहीं है। यह तो सिर्फ दार्शनिकों की मैं कहूँ तात्कालिक पैशन है जिससे समस्या पैदा हो रही है। यदि आप भारतीय दर्शन के अध्ययन के विभागों को देखें तो उनमें यह इंडीपेंडेंस के बाद यह बात दिखाई दी, इसके पहले नहीं थी। इसके पहले सौ वर्ष तक जिन दर्शन का अध्ययन भारतीय विश्वविद्यालय में होता रहा या पाठशाला में होता रहा उनमें परंपरा भी थी और परंपरा में परिवर्तन भी था, दोनों बातें थीं। बल्कि विश्वविद्यालय के विभागों में तो पाश्चात्य दर्शन, वाजी दर्शन के संबंध में विभिन्न प्रयास किया जाता रहा। स्वाधीनता के बाद जरूर ऐसे-ऐसे हमारे विश्वविद्यालय में आए जिन्होंने पाठ्यक्रम ही बदल दिए। अब सिर्फ यह है अधिकांश दर्शन विभागों में भारतीय दर्शन का ज्ञान मार्जीनल हो जाता है। पश्चिम में तो पहले भी था। उसकी स्थिति तो मैं नहीं कहूँगा लेकिन और ज्ञान के क्षेत्र में समस्या वास्तविक है। राजनीति की बात आपने की। मुझे याद है जब आपके प्रोजेक्ट में 73 में, 72 में हम लोग गए थे काशी, पंडितों से बात करने, राजेश्वर शास्त्री कहते थे कि उन्होंने 47 के बाद अर्थशास्त्र का अध्ययन शुरू किया और उस पर उन्होंने एक बड़ी विशालकाय टीका लिखी है जो कि अभी दो

साल पहले जिसका अधूरा थोड़ा भाग छपा है। बाकी अभी छपा नहीं है। कोई सुनता नहीं है इस बात को, पढ़ना नहीं चाहता। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डॉ. बेणी प्रसाद इंडीपेंडेंस के पहले हैड थे पालिटिकल साइंस डिपार्टमेंट के। उनका अपना रिसर्च वर्क इंडियन पालिटिक्स थाट पर ही था। लंदन से की थी। उन्होंने कभी कोर्स में इंडियन पालिटिकल थाट नहीं रखा। डॉ. पंत तो कोटिल्य के अर्थशास्त्र थे, स्कालर, उन्होंने इस कोर्स को रखा नहीं था। अब जो प्रजेंट है वह महाभारत पालिटिकल थाट पर डिलीट हैं। वह भी उस कोर्स को नहीं रखते, नहीं पढ़ाते हैं। सवाल यह है जो पुराने श्लोक हैं...

दंडनीति पर सारी विद्या उपेक्षित रहती है। दंड नीति बदली जाए तो विद्या नष्ट हो जाती है। इस स्थिति से राजनीति नहीं उभर पा रही है। इस दृष्टि से आप बताइए किस तरह से विश्वविद्यालयों में अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र इनमें एक रीकंडीशंड थिकिंग एबाउट पास्ट एडीशंस में बीकम इंटेगरल पार्ट ऑफ प्रेजेंट एजुकेशन, उसके बिना तो कुछ होगा ही नहीं। यह मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। पहले इलाहाबाद में था नहीं, अब शुरू हो गया है लेकिन जब शुरू हुआ है वह वैसा ही है। शुरू हुआ है। खत्म हो जाता है। उसमें भारत से संबंध होता नहीं। जो ह्यूमन साइंस है पालिटिक्स, इकोनोमिक्स, सोशलोजी इनमें बिलकुल ही हमारा जो विश्वविद्यालय है, विधाओं का अध्यापन है, दे आर मिक्सिंग टु डु विद इंडियन ट्रेडिशन, इंडियन थॉट, हाऊ केन दैट बी कारेक्टेड। ह्वाट केन मी डन अबाउट इट। यह प्रश्न पूछता हूँ।

प्रश्न : केन आई से वन थिंग। इफ यू से दिस इज यू ऑफ वेस्टर्न युनिवर्सिटी, इट इज अलाहाबाद एंड सो ऑन एंड बनारस। ह्वाट अबाउट दिस संस्कृत युनिवर्सिटी इवन इन संस्कृति युनिवर्सिटी, दे डू नोट टीच ह्वाट दे हैव कार्सेस इन सोशलोजी, दे हैव कोर्स इन पालिटिकल साइंस, दे डू नोट टीच टेक्स्ट इवन देयर।

उत्तर : इन हीज ट्रेडीशनल युनिवर्सिटीज देयर इज नो युनिवर्सिटी इन इंडिया, आई नो विच गिव आचार्य डिग्री, अर्थशास्त्र। दे ओनली हैव आचार्य इतिहास पुराण, देट्स आल। देयर इज नो संस्कृत युनिवर्सिटी

एनीवेयर इन द कंटरी। वेयर टीचीज अर्थ शास्त्र लाइक देट।

डॉ. दयाकृष्ण : यह जो समस्या उठाई गई है इसको दो प्रकार से देखा जा सकता है। यह ठीक है इसमें जो पढ़ाया जाता है जब तक वह पढ़ाया नहीं जाएगा आपकी बुद्धि का अंश नहीं बनेगा। मैं समझता हूँ मेरे सामने जो कठिनाई आई थी उस कठिनाई के बारे में मैं आपको कुछ बताना चाहता हूँ और मैंने उसका कैसे हल ढूँढा है। क्योंकि मैं यह समझता हूँ कि आज के परिप्रेक्ष्य में जो पढ़ा हुआ आदमी है और जो पश्चिमी चिंतन से वाकिफ है वह जब इन ग्रंथों को देखता है तो उसको लगता है इसमें कुछ है नहीं। उससे उसको कुछ लाभ नहीं होगा सोचने में। क्योंकि वह एक प्रकार से लिखे गए हैं उसको लगता है यह अद्‌भुत क्लासिफिकेशन है, क्लासीफिकेटरी है। कोई थ्योरिटिकल इशूज नहीं उठाए गए हैं, कोई प्राब्लम्स इंपोज नहीं की गई है। कोई सोल्यूशन की विधाएँ नहीं बताई गई हैं। यह नहीं कहा गया है, इनकी कैसे यह बताया जाए इसमें गलती क्या है, आगे कैसे बढ़ाया जाए। उसका ज्ञान कुछ इस प्रकार से मिलता है जो ज्ञान का स्वरूप—जिसे हम मानते हैं उसमें वह परिलक्षित नहीं होता। जब ऐसा लगता है तो हम किताब बंद करते हैं कि बेकार अपना वक्त क्यों खोएँ। खुद मेरी यह भावना रही है कि यह बेकार वक्त खोना है। आओ, चलो कुछ और पढ़ें। वैवर पढ़ें, मार्क्सीस्ट और चीजें पढ़ें। फिर जब जिन लोगों ने उन पर अंग्रेजी में लिखा है उनको आप पढ़िए। उनको पढ़कर ऐसा लगता है यह कुछ है नहीं। इसमें क्या पढ़ेंगे। खुद भारतीय दर्शन पर जो किताबें लिखी गई हैं, अच्छी-से-अच्छी, आप दासगुप्ता को ले लीजिए, उनकी हिस्ट्री अच्छी है और कोई किताब ले लीजिए। उसको पढ़कर कभी आपको, अगर आप दार्शनिक वृत्ति के आदमी हैं, कभी आपको भारतीय दर्शन रुचि उत्पन्न नहीं होगी। खुद मैंने जब यह पढ़ा, मैंने उनको हटा दिया, इससे मुझे कुछ नहीं मिलनेवाला था। जेनुइनली यह परिवर्तन मेरे में कैसे आया। तो मुझे लगा वास्तव में कैसे हुआ, यह कहानी तो मैं खुद नहीं जानता। लेकिन मुझे धीरे-धीरे लगा कि वास्तव में अगर हमारी ज्ञान की परंपरा को पकड़ना है तो एक नया तरीका अपनाना होगा। वह तरीका यह है कि हम इन ग्रंथों के पीछे जो प्रश्न छिपे हैं, जो समस्याएँ छिपी हैं उनको उजागर करें, हमें

उनके हल से वास्ता नहीं है। हमें उस समस्या से, उस प्रश्न से वास्ता है जो इस परंपरा को बोधिक रूप में तंग कर रही है। जब मैंने उन ग्रंथों को इस तरह से देखना शुरू किया तो एक नई चीज, एक नई रोशनी पैदा हुई कि हाँ, यह समस्या थी। यह इनके प्रश्न थे। फिर मैंने कहा, चलो, एक नया तरीका अपनाएँ। वह तरीका क्या है कि इनका प्रत्यय जाल क्या है, प्रत्यय जगत क्या है, किन प्रत्ययों से, किन कांसेप्ट के द्वारा इस क्षेत्र को समझने की चेष्टा कर रहे हैं, नापने की चेष्टा कर रहे हैं, ह्वाट इज द कंसेप्टचुअल मैपिंग, द कंसेप्टचुअल स्ट्रक्चर थ्रो दे आर ट्राइंग आर्टीकुलेट एप्रीहैंड दिस एरिया ऑफ एक्सपीरियंस। मैंने कहा कुछ मत करो, ग्रंथ को देखो और जहाँ भी आपको प्रत्यय मिले उसको चुन लो। हमें इससे कोई वास्ता नहीं है कि उस प्रत्यय के बारे में क्या कहा जा रहा है। लेकिन प्रत्ययों का समूह बना लीजिए। जैसे ही मैंने यह किया तो फिर प्रत्यय का समूह प्रत्यय का संबंध होता है तो यह प्रत्ययों का आपसी संबंध क्या है? कौन-सा प्रत्यय प्रधान है, कौन-सा आनुषंगिक है, कौन-सा राजा है, कौन-सा मंत्री है तो फिर आपको इसमें एक तस्वीर झलकती है, एक बोधिक तस्वीर बनती है कि यह प्रत्यय जाल है। इसका यह स्वरूप है, इसके द्वारा इन समस्याओं का, इन प्रश्नों का उत्तर देने की चेष्टा की है। फिर आप दूसरे ग्रंथ लीजिए। इसका प्रत्यय जाल लीजिए। आप भेद देखिए, कुछ प्रत्यय वही हैं, कुछ प्रत्यय भिन्न हैं। जैसे ही आप प्रत्ययों में भेद देखते हैं, आपको लगता है कुछ परिवर्तन हुआ है। फिर क्या प्राधान्य गौण का भेद होता है। यह भी होता है कि कोई प्रत्यय जिसकी पहले बहुत कम चर्चा है उसकी अब अधिक चर्चा होने लगी है। यही नहीं, क्योंकि हमारे यहाँ लिखने की एक परंपरा है, उसी ग्रंथ पर लिखा जा रहा है या यह कहा जा रहा है, अभी मैंने इसी विधि को थोड़ा आगे बढ़ाया है, इस विधा को कि अगर हम उसी परंपरा में जो 4-5-6 बड़े प्रसिद्ध ग्रंथ लें, एक के बाद एक लिखे गए हैं उसी सूत्र में लिख गए हैं।

इस पर कोई दो सफा लिखता है, या कोई आधा सफा लिखता है या हटा देता है, इसके लिए वह महत्त्व की बात नहीं है। किसी पहले आदमी के लिए बहुत महत्त्व की बात है। आपको

ऐतिहासिक परिवर्तन लगता है—बुद्धि के क्षेत्र में, चिंतन के क्षेत्र में। जब यह किया तो फिर मैंने तीसरा तरीका अपनाया। मैंने कहा ग्रंथ को छोड़ो। यह प्रत्यय जाल को लो। इन प्रश्नों को लो, समस्याओं को लो और उस प्रत्यय जाल के द्वारा हम इन समस्याओं के बारे में क्या कर सकते हैं, या आज-आज की समस्याओं के बारे में क्या कह सकते हैं? तब एक नई बात उत्पन्न हुई। अब हमें इस बात की कोई परवाह नहीं है कि हम प्रत्ययों को जो अर्थ दे रहे हैं वह अर्थ वास्तव में पहले दिया गया था या नहीं। हम अर्थ दे रहे हैं। हम भी ऋषि हैं, हम भी विचारक हैं, हम भी सोचनेवाले हैं, उसी तरह से जैसे वह लोग सोचते हैं। हम इन प्रत्ययों को एक अर्थ देते हैं। इस प्रत्यय जाल का एक नया अर्थ समूह जिसे कहते हैं अर्थतंत्र, बनाते हैं, फिर हमने कहा, देखो, वे लोग भी अर्थतंत्र बना देते हैं, वे भी हमारी तरह से बैठे थे, हम अपने अर्थतंत्र को उनके अर्थतंत्र से मिलाकर देखें और फिर देखें कि हममें और उनमें क्या भेद है। जब ऐसा करते हैं तो एक नई बात उत्पन्न होती है कि उन्होंने जो समस्या उठाई थी और हमने जो समस्या उठाई थी उसमें साम्य भी हो सकता है, वैषम्य भी हो सकता है। तब हम भेदते हैं कि क्या उन्होंने वह प्रश्न उठाया था जो मैंने उठाया था? या कोई अन्य प्रश्न उठाया था जो मेरी नजर से बच गया था। उसका उन्होंने क्या उत्तर दिया है। अगर मेरा ही प्रश्न उठा है तो उन्होंने उसका क्या उत्तर दिया है। वह उत्तर हमें मान्य है, नहीं है। नहीं है तो क्यों नहीं है। इस प्रकार से जिसको डायलॉग कहते हैं वह पैदा होता है हममें और परंपरा के ग्रंथों में। ऐसा देखने पर ग्रंथ जीवित हो उठता है, वह नया प्रश्न उपस्थित करता है, नया उत्तर, नई समस्याएँ। यह एक ऐसी बात है कि यह कोई ऐसी नहीं है, समाप्त होनेवाली बात है। हर रोज नया प्रश्न उठता है, हर रोज नया उत्तर ढूँढ़ते हैं। अगर मैं कर रहा हूँ, कोई दूसरा कर रहा है तो वह दूसरी चीज देखता है। कम-से-कम जयपुर में हम 3-4 लोग हैं तो जो दूसरा देखता है वह मैं नहीं देखता। जो मैं देखता हूँ वह नहीं देखता है। लेकिन हम दोनों जब वार्तालाप करते हैं तो हम एक-दूसरे से सीखते हैं। और इस प्रकार

से यह कहानी आगे बढ़ती है। तो मैं समझता हूँ यह विधि आप भी अपना सकते हैं और हरेक आदमी अपना सकते हैं जिसको थोड़ी भी रुचि हो। आप देखिए राजनीति के ऊपर धर्म कोष के 6 वाल्यूम हैं, जिसमें वेद से लेकर 18वीं शताब्दी तक जो और राज्य के बारे में चिंतन हुआ है वह दिया हुआ है, प्रोनोलोजिकली दिया गया है। मूल से दिया गया उद्धरण दिया गया है। समस्या को बाकायदा ट्रांसीफाई करके दिया गया है, आप उसको पढ़िए। आपमें प्रश्न स्वयं जागृत होगा। आप देखिए समस्या उठी थी। ब्राह्मण जो है वह अदंडय है। ब्राह्मण को कोई दंड नहीं दिया जा सकता। यह ग्रंथों में आता है, धर्मग्रंथों में आता है, राजग्रंथों में आता है। क्यों नहीं दिया जा सकता है क्योंकि ब्राह्मण जो है वह राज्य के ऊपर अंकुश लगाता है। ही इज द सेंसर। ही इज द फोर्थ एस्टेट तो उसको स्वतंत्रता होनी चाहिए, क्रिटीसाइज करने के लिए। अगर वह भय के बारे में मारा जाए, अगर मैं राजा को क्रिटीसीइज करूँगा तो मुझे दंड दिया जाएगा तो वह नहीं करेगा। लोभ भी होता है लेकिन दंड तो नहीं होना चाहिए। तो शास्त्रकारों ने कहा कि ब्राह्मण अदंडय होना चाहिए। उसके बाद का आप डिसकशन देखिए। वह कहते हैं क्यों अदंडय होना चाहिए। यह तो जस्टिस के खिलाफ है। ब्राह्मण ने कोई कर्म किया है जो दंडनीय है तो वह ब्राह्मण है इसलिए उसको दंड नहीं मिलना चाहिए। दूसरों को दंड मिलता है, यह ठीक नहीं है तो फिर शास्त्रकार क्या कहते हैं, नहीं, दंड तो मिलना चाहिए लेकिन अलग दंड मिलना चाहिए—डिफरेंशियल थ्योरी ऑफ पनिशमेंट। क्योंकि उसको कुछ चीजों के लिए अधिक दंड मिलना चाहिए, कुछ चीजों के लिए कम। वही बात जिसके लिए ब्राह्मण को अधिक दंड मिलना चाहिए, शूद्र को दंड दिया ही नहीं जाएगा क्योंकि नथिंग इज एक्सपेक्टिड फ्राम हिम। कुछ अन्य बातों के लिए उसको दंड बहुत कम दिया जाएगा। उसके बाद के लोग फिर क्या कहते हैं, कहते हैं कि नहीं, यह जस्टिस नहीं है। वही कर्म किया है, वही उल्लंघन किया है तो दंड में भेद क्यों। फिर कहते हैं क्या करना चाहिए? कहते हैं, देखो, अदंडय नहीं हो सकता, दंड

में भेद नहीं हो सकता, अवध्य होना चाहिए, कैपिटल पनिशमेंट नहीं होना चाहिए। क्योंकि ही मस्ट बी सेफगार्डिड इन सम सेंस, द इंटेलेक्चुअल क्लासेज टु द सेफ गार्डिड फ्राम द मैकेनिज्म ऑफ द स्टेट। इसको आप इस तरीके से रखिए। आप देखिए उसमें लोजिक है, डिसकशन में। कंसीडरेशन ऑफ जस्टिस एंड कंसीडरेशन ऑफ सेफगार्डिड द क्रिटिक्स ऑफ द स्टेट ऑफ द पालिटिकल पावर। वह तो कहते हैं अवध्य होना चाहिए। फिर कहते हैं, नहीं, यह अवध्य क्यों। लास्ट थिंकर कहते हैं कैपिटल पनिशमेंट शुड बी एबोलिश फार एवरी बाडी। यह मैंने आपको एक उदाहरण दिया है और बीसियों उदाहरण दे सकता हूँ। अब इसमें समस्या क्या निहित है कि एक तो इक्वलिटी ऑफ पनिशमेंट, इक्वलिटी बीफोर द लॉ। दूसरा यह है कि नहीं, द क्रिटिक्स हैव टु बी सेफगार्डिड इन ए सर्टेन वे अगेंस्ट द पावर ऑफ द स्टेट। आज भी आपके सामने यह समस्या है। आप इंडिविजुअल राइट्स की बात करते हैं। सिविल राइट्स की बात करते हैं, ह्यूमन रइट्स की बात करते हैं। इस तरीके की हजारों चीजें आपको उन ग्रंथों में मिलेगी। कहने का अर्थ यह है कि किस प्रकार से हम इस सारे ज्ञान को जीवंत बना सकते हैं। उसके कई तरीके हैं। हमने कुछ अपनाएँ हैं। आप भी कुछ तरीका अपनाइए। इस तरफ से बिलकुल मुँह फेर लेना मैं समझता हूँ ठीक नहीं है। क्यों ठीक नहीं है इसलिए कि यह मान्यता की इस सारी परंपरा में कुछ है ही नहीं और पश्चिम की जो परंपरा है उसमें सब कुछ है, यह अन्याय करना है और दूसरी परंपराएँ, चीन की परंपरा है। आपको आश्चर्य होगा। एक किताब है अगर आपने नहीं पढ़ी हो तो पढ़िए। उसका नाम यही है—थिकिंग थ्रू कंफ्यूसस। दो लोगों की है—एक रोजर एम्स और डेविड हाल। एक किताब है उसको मैंने पढ़ा। आपको आश्चर्य होगा कि मुझे भारतीय परंपरा को अधिक समझने में सहायता मिली। हमारे यहाँ जो श्रवण, मनन विद्या सब की बात कही गई है उसको मैं स्वयं मजाक के रूप में लेता था। उसको कंफ्यूसस ने किस प्रकार से समझाया है और इस प्रकार से समझाया कि मैं अपनी परंपरा को अधिक सार्थक रूप से

समझने लगा। तो कहने का अर्थ यह है कि यह हमारी परंपरा नहीं है, चीन की हमसे भी विशाल और विषद परंपरा है, पुरानी परंपरा है। उसमें विचार की परंपरा क्या रही है? आखिर इतनी बड़ी सभ्यताएँ, संस्कृति बगैर विचार के चल नहीं सकती। स्थायित्व प्रदान नहीं कर सकती। लेकिन हमने यह मान लिया है, पश्चिम का इतिहास भी हम उनकी नजरों से देखने लगे हैं। ग्रीक नेशनलिटी के बारे में अरस्तु यह प्रश्न उपस्थित करता है जिसकी तरफ़ कोई ध्यान नहीं देता। इफ मैन इज नेशनल बींग दैन स्लेव इज आल्सो ए रैशनल इफ स्लेव इज नेशनल, हाऊ केन ही बी ट्रीटीड एज ए स्लेव। इफ ए मैन इज ए नेशनल बींग, वीमैन इज रेशनल दैन हाऊ केन बी ट्रीटीड डिफरेनशिएट फ्राम ए मैन एंड अरिस्ट्टोटल इज फोर्स्ड टु से दैट्स स्लेव इज नोट कंपलीटली रेशनल एंड वीमैन आर नोट कंपलीटली रेशनल एंड देयरफोर दे कैन बी ट्रीटीड डिफरेंटयली। आप जब अरस्तु के बारे में पढ़ते हैं तो यह तो नहीं पढ़ते। वह यह नहीं कहता बल्कि इससे भी आगे जाता है जिसको सुनकर आपको आश्चर्य होगा। वह अरस्तु यह कहता है जो कांकर्ड रेशेज है उनमें रेशनलीटी नहीं होती। स्लेव इज ए कांकर्ड पर्सन। स्लेव को आपने जीता है वह स्लेव बना है इसलिए वह पूर्ण रूप से रेशनल नहीं है। इसमें सिर्फ इतनी रेशनलिटी है कि आपकी बात समझकर आपकी आज्ञा का पालन कर सकता है। अनेक आयाम है लेकिन पश्चिम की वह तस्वीर जो उन्होंने अपने लिए बनाई है वह आप मान लेते हैं। आपने साकरिटी सोचा कि जब मरनेवाला है वह क्या कहता है। सावरेनिटी इज ए ग्रेटस्टएक्जांपल ऑफ रेशनलिटी ऑफ द वेस्ट। वह कहता है कि देखो मैंने एक व्रत लिया था। अगर यह बात हो जाएगी तो एक मुर्गा चढ़ाऊँगा देवी पर। ही सेकरीफाइस्ड द काक, ही प्रोमिज्ड टु ए गाडेस एंड ही सैड इफ आई हैव नोट बी एबल टु डू इट बट यू डु इट ऑन माई बीऑफ। दिस इज द ग्रेट रेशनलिस्ट ऑफ द... बट यू इग्नोर इट। वाई डु वई इग्नोर इट। अगर हम तरफ ध्यान देना शुरू करेंगे तो पश्चिम की तस्वीर बदलेगी। वही तस्वीर न उनको पसंद है न हम

को। क्योंकि तब वह रेशनल हो जाएगा। सोवरेन से बड़ा रेशनललिस्ट, रेशनल कैसे हो सकता है। अरे, वह कहता है अगर यह काम हो जाएगा तो मैं मुर्गा चढ़ाऊँगा। यह रेशनलिटी है। डिकार्ड द फादर ऑफ रेशनलज्य हम भी पढ़ाते हैं, आप भी पढ़ाते हैं, सब लोग पढ़ते हैं। वह वादा लेता है कि मैं पैदल जाऊँगा उस मंदिर तक, उस गिरजा तक अगर यह बात हो जाएगी। वह पैदल जाता है। यह आस्था है, रेशनलिटी है, ट्राउट है तो ऐसी अनेक कथाएँ हैं। लेकिन आज वह सब हम नजरअंदाज करते हैं। वह भी नजरअंदाज करते हैं और वह कोशिश करते हैं सारी दुनिया नजरअंदाज करे तो कहने का सीधा सादा अर्थ यह है।

प्रश्न : यहाँ उलटा है। स्लेव्स आर मोर रेशनललिस्टक। वह साँप की पूजा करता है लेकिन घर में साँप आएगा तो मार देता है। लेकिन ब्राह्मण पूजा करता है, मारेगा तो मर जाता है, मगर वह नहीं मारता है। एक्चुअली दिस इज बेस्ड ऑफ वर्ण सिस्टम चातुर्य...

जो गीता में कहा गया है वह चातुर्य वर्ण पिंक कलर क्षत्रियाज, ह्वाइट कलर आर बनियाज, पिंकु एंड व्हाइट मिक्स्ड आर ब्राह्मणज। आल अदर क्लर्स आर शूद्राज, दैट इज भृगुज। आप ब्राह्मण को बोल रहे थे कि ब्राह्मण को दंड नहीं देना है, वह इसी सिस्टम पर बेस्ड है। क्योंकि ब्राह्मण गलती नहीं कर सकता।

डॉ. दयाकृष्ण : ब्राह्मण इज ए फंक्शनल डिफरेंशयल। आप इन चीजों को ट्रांजिट करिए, वेस्टर्न ट्रांसलेट में यू विल बी एमेज्ड। ब्राह्मण इज डिफाइंड बाई फक्शन। लक्षण क्या है? ब्राह्मण जो हैं, जो पठन-पाठन करता है, जो विद्याध्ययन करता है, जो पढ़ाता है। वैश्य कौन हैं—असंख्यादंड लाभकारिणी बुद्धि। प्रोफिट मोटिव का इससे बढ़िया कोटेशन नहीं हो सकता। असंख्या मीन इनफिनिट। धन लाभकारिणी, बुद्धि जिसकी होती है वह वैश्य है। क्षत्रीय कौन हैं, शास्त्रेय जीविनाय। वन हू लिव्ज बाई बिल्डिंग आर्म्स। यही नहीं वर्ण की बहुत बात करते हैं। आप वेद पढ़िए। यजुर्वेद के तीसरे में जहाँ कहा जाता है जो पुरुष है उससे सब उत्पन्न हुआ है। आप जाइए और पढ़िए। उसमें ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के बाद कम-

से-कम 50 सौ अन्य लोगों की चर्चा की गई है जिसमें प्रोफेशनल भी हैं, नान प्रोफेशनल भी हैं। यह कहा गया है यह सब उससे उत्पन्न हुए हैं। यह सब न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय है, न वैश्य हैं, न शूद्र हैं। उसके बाद क्या कहते हैं उसकी जो लास्ट लाइन है—इट इज एक्सोलूटली एमेजिंग। वह कहते हैं अब्रह्मणा अक्षुद्रा, अक्षद्रा प्रजापतया। देखिए वैश्य, क्षत्रिय की तो बात ही नहीं करनी है, अब्रह्माण, अब्राह्मण यह न तो ब्राह्मण है, न शूद्र है, अक्षुद्रा फिर भी यह प्रजापतियों की संतान है। खुद यज्ञ में रथकार निषाद की चर्चा होती है और कहा जाता है यह न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है और न शूद्र। बीसियों आपको कथाएँ सुनाई जा सकती हैं लेकिन यह कथा कहने की बात नहीं है। द कांसेप्ट ऑफ द वर्ल्ड अगेन आई वुड लाइक टु से कि या तो हम लोग सोचना सीखें या सोचना नहीं सीखेंगे तो हम उसी दलदल में फँसे रहेंगे जिस दलदल में बहुत से लोग बात करते हैं। वर्ण की बात करना, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की बात करना नहीं है। आई रिपोट, यू मस्ट बी एबल टु डिस्टियूगिंस बिटविन वैरीएबल एंड वैल्युएबल ऑफ वैरीएबल। कुछ मॉडर्न थिकिंग करिए। वैरीएबल हैज सर्टेन वैल्यूज़ बट ह्वाट इज द रेंज ऑफ वैल्यूज इज डिटरमीन बाई द कांसेंप्ट ऑफ द वैरीएबल नोट बाई द स्पेसिफिसिटी। वर्ण कितने हो सकते हैं यह वर्ण का नोशन डिटरमिन नहीं करता। ठीक है पुरानी परंपरा ने चार को ही लिया है। हालाँकि उसमें मिलता है कि और भी वर्ण कहे जा सकते थे लेकिन आज भी सोचें अगर हमें वर्ण के कांसेप्ट को यूज करना है तो वई आर नोट बाउंड टु से, देयर आर ओनली फोर वर्णाज। मैनी मोरवर्णाज, वई थिक इन द टर्म ऑफ कांसेप्ट, चेंज द वैल्यूज ऑफ द वैरीएबल्स। अगर हमें पुरुषार्थ कंटेक्स्ट में सोचना है। दे आर नोट ओनली फोर फुरुषार्थज, देयर आर मैनी मोर फुरुषार्थाज लैस आर मोर, यू मस्ट बी एबल टु डिस्टिगुइस बिटविन ए कांसप्ट एंड द स्पेसिफिसिटी अंडर द कांसेप्ट। तो इस प्रकार से चिंतक की परंपरा तभी आगे बढ़ेगी जब आप यह सोचेंगे कि किसी समाज को समाज होने के लिए कितने फंक्शन की जरूरत है। जब

हम आदि के बारे में सोचते हैं, फिजोलोजिकल फंक्शन की बात सोचते हैं, हार्ट होना चाहिए, लंग्ज होना चाहिए, यह होना चाहिए, मेजर सिक्स फंक्शन बनाते हैं। यह 6 फंक्शन नहीं हैं तो लीविंग वींग नहीं हो सकता। इसी तरीके से वई थिंक ऑफ ए कांपलेक्स आर्गेनिज्म काल्ड द सोसाइटी, ह्वाट इज द सोसाइटी, ह्वाट आर नेसेसरी कंस्टीट्यूएंट ऑफ द सोसाइटी। ह्वाट फंक्शन्स शुद्र बी देयर, हू शेयर द आर्गेनाइज द फंक्शन, हू ट्रेंड पर्सन ऑफ द फंक्शन्स, मैनटेनेंस फंक्शन क्या होता है। जब तक हम नए तरीके से नहीं सोचेंगे तब तक हम वही दोहराते रहेंगे कि वर्ण क्या होता है, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शुद्र। अरे और क्यों नहीं हो सकता? ब्राह्मण क्या होता है, क्या फंक्शन एक्सरसाइज करता है? फंक्शनल डेफिशियंसी चाहिए। स्ट्रक्चरल डेफिशिंट क्या होती है? स्ट्रक्चरल डेफीशियसी की जरूरत नहीं है। जो आदमी फंक्शन एक्सरसाइज करता है वह करता है। या तो आप यह मानिए आपको कुछ करना नहीं है तो मत करिए। पश्चिम की परंपरा में भी कुछ आगे बढ़िए ना। आई वुड लाइक टु नो ह्वाट हैज बीन डन इन इंडियन थाट ऑफ द वेस्टर्न ट्रेडीशन ड्यूरिंग द लास्ट 150 इयर्स। ह्वाट हैज बीन डन इन सोशलोजी, ह्वाट हैज बीन डन इन साइकोलोजी। ह्वाट हैज बीन इन पालिटिकल साइंस। नथिंग।

प्रश्न : वाई बोथ द मैटर्स एंड हीयर। बीकाज ऑफ दैट आनली। दे वुड लेड कम्यूनिकेशंस, ब्राट द युनिफार्मिटी एंड एजुकेशन सिस्टम, ऑपन द डोर दंड विंडोज फार एवरी कल्चर सिविलाइजेशन देट इज वाई वई ड्राइव फार साउथ, अदरवाइज एवरीबाडी बंगल का जिला देश परदेश ही था। यह इकट्ठा हो गया। वह बोलता है। हम लोग इकट्ठे हो गए, देश के तले अंग्रेज लोग हैं, तब भी 1857 में रेवोलूशन, वाई इट स्टार्ट।

1954 में ट्रेन इंट्रोड्यूज हुई। इकट्ठा हुए, बंबई से कलकत्ता से, 57 का रेवोलूशन आया। दे डोंट वांट प्रोग्रेस एंडयूनिटी ऑफ एंटायर पीपल ऑफ द कंटरी।

डॉ. दयाकृष्ण : आई थिंक यू विल एग्री विद सम अदर पीपल लाइक टु

से समथिंग। कुछ और लोगों को कुछ बात कहनी है तो कहने दीजिए।

प्रश्न : बट दिस इज मोर वैल्युएबल थिंक फार डिसकशन फार ए मैन लाइक यू। वाई यू लूज युवर टाइम। दैट्स वाई दे विल सपोर्ट यू, दे विल से सम विग थिंक्स। जो आपने बताया प्रेक्टीकल में वह नहीं हो रहा है। प्रेक्टीकल में यह परवर्टिड, क्षत्रिय धर्म इधर नहीं है। असली प्रधानमंत्री मैं हूँ। मेरे को मार देना जैसे राम को मारा। या इन लोगों को मारा, उन लोगों को पुराण में। 40 साल से प्रधानमंत्री मैं ही हूँ। अभी भी प्रधानमंत्री मैं ही हूँ देश में।

डॉ. दयाकृष्ण : एनीबॉडी एल्ज। फिर हम लोग समाप्त करें। किसी को कोई विशेष बात कहनी हो? अन्यथा : ओम शांति, ओम शांति, ओम शांति।

रचनाकार : अज्ञेय का जीवन वृत्त

नाम	: सच्चिदानंद वात्स्यायन
	: बचपन का नाम—सच्चा
	: ललित निबंधकार नाम—कुट्टिचातन
	: रचनाकार नाम—अज्ञेय
	: (जैनेंद्र-प्रेमचंद का दिया गया नाम है—अज्ञेय)
माता-पिता	: व्यंती देवी—पंडित हीरानंद शास्त्री
1911	: (7 मार्च) जन्म कुशीनगर (कसया), जिला देवरिया (उ.प्र.) में एक पुरातत्त्व-उत्खनन शिविर में।
1915	: बचपन, लखनऊ में, संस्कृत मौखिक परंपरा से शिक्षा का आरंभ
1929	: श्रीनगर एवं जम्मू में, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी की प्रारंभिक शिक्षा
1921	: उडुपी (नीलगिरि) में मध्वाचार्य-संस्थान में यज्ञोपवीत संस्कार।
1925	: नालंदा एवं पटना में स्व. काशीप्रसाद जायसवाल रायबहादुर हीरालाल और स्व. राखालदास बंद्योपाध्याय का संपर्क मिला।
	: स्व. राखालदास बंद्योपाध्याय से बांग्ला सीखी।
	: सन् 1921 में माँ के साथ जलियाँवाला कांड की घटना को

लेकर पंजाब-यात्रा के फलस्वरूप देशभक्ति का संकल्प और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रति विद्रोह की भावना।

: पंजाब से 1925 में प्राइवेट हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की।

1927 : इंटर-साहित्य क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास।

1929 : बी. एस-सी. फारमन कॉलेज, लाहौर से प्रथम श्रेणी में प्रथम।

: मद्रास में अंग्रेजी के प्रोफेसर एंडरसन के साथ टैगोर-मंडल की स्थापना।

: लाहौर में अमेरिकी प्रोफेसर जे.बी. बनेड एवं प्रोफेसर डोनियल से संपर्क।

: लाहौर में क्रांतिकारी जीवन का श्री गणेश हिंदुस्तान रिपब्लिकन पार्टी से जुड़े चंद्रशेखर आजाद, भगवतीचरण वोहरा, सुखदेव के संपर्क में आने पर हुआ।

: पहली कहानी 1924 में पंजाब की यात्रा के फलस्वरूप अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रति विद्रोह भावना का जन्म।

1936 : क्रांतिकारी जीवन

: हिंदुस्तान रिपब्लिकन आर्मी में सक्रियता।

: वहीं पर देवराज, कमलकृष्ण एवं वेदप्रकाश नंदा से परिचय।

: 1930 में भगतसिंह को छुड़ाने का प्रयत्न। लेकिन भगवतीचरण वोहरा के एक घटना में शहीद हो जाने के कारण योजना का स्थगन।

: दिल्ली में हिमालियन टॉयलेट फैक्ट्री में बम बनाने का कार्य क्रांतिकारी मित्रों के साथ आरंभ किया, जिसकी परिणति अमृतसर में ऐसी ही फैक्ट्री कायम करने के सिलसिले में 15 नवंबर, 1930 में देवराज एवं कमल कृष्ण के साथ गिरफ्तारी में हुई।

: एक महीने लाहौर जेल में। तत्पश्चात अमृतसर की हवालात में बंद रहे।

: 1931 में अन्य मुकदमा जो 1933 तक चला। दिल्ली जेल

में कालकोठरी में बंद रहे। इसी बीच 'चिंता' काव्य एवं 'शेखर : एक जीवनी' यहीं पर सृजित हुआ। साथ ही 'भग्नदूत' की कविताओं का प्रकाशन।

: सन् 1933 में अपने घर में नजरबंद। घर लौटने पर छोटे एवं माता की मृत्यु पर दुख तथा पिता की नौकरी से सेवानिवृत्ति।

: क्रांतिकारी जीवन में 'रावी' के तट पर छलाँग लगाने से घुटने की टोपी उतर गई जिसकी पीड़ा जीवन-भर झेलते रहे।

1936 : जीवन में आजीविका की तलाश। 'सैनिक' अखबार आगरा में श्री कृष्णदत्त पालीवाल के साथ साल भर 'सैनिक' के संपादक मंडल में रहे।

: इसी समय किसान आंदोलन में सक्रिय रहे।

: इसी अवधि में रामविलास शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे तथा नेमिचंद्र जैन से परिचय हुआ।

1937 : पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर 'विशाल भारत' में गए। लगभग डेढ़ वर्ष वहाँ रहे। यहीं पर पुलिनसेन, बुद्धदेव वसु एवं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ बलराज साहनी से परिचय में आए।

: व्यक्तिगत कारणों से 'विशाल भारत' छोड़कर पिता के पास बड़ौदा रहे।

: विदेश जाने का कार्यक्रम युद्ध छिड़ जाने के कारण स्थगित करना पड़ा और रेडियो में नौकरी कर ली। इस दौरान साहित्य के अनेक पक्षों से गहन-संपर्क हुआ। सन् 1937 में ही 'विपथगा' का प्रकाशन हुआ।

1940 : जुलाई 1940 में सिविल पद्धति से बंगाली युवती संतोष से विवाह। अनमन होने से अगस्त 1940 में ही संतोष से अलग हो गए। सन् 1946 में पूरी तरह विवाह-विच्छेद।

1941 : 'शेखर : एक जीवनी' का प्रकाशन। हर ओर विरोध और प्रशंसा का दौर।

1942 : दिल्ली में अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी सम्मेलन का आयोजन एवं प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्यों में

कृश्नचंदर एवं शिवदान सिंह के साथ। इसी सम्मेलन में प्रगतिशील गुट से अलगाव।

: इसी वर्ष 'आधुनिक हिंदी साहित्य' का संपादन।

1943 : 'तार सप्तक' का संपादन। हिंदी आलोचना में भूचाल।

: सेना में नौकरी—असम-बर्मा फ्रंट पर नियुक्ति।

1944 : 'शेखर : एक जीवनी' के दूसरे भाग का प्रकाशन, 'परंपरा' का प्रकाशन।

1945 : सेना की नौकरी से मुक्ति पाने का आवेदन जो 1946 में स्वीकृत। 'कोठरी की बात' का प्रकाशन।

1946 : गुरुदासपुर पंजाब में पिता की मृत्यु से भारी धक्का।

: मेरठ साहित्य परिषद् की स्थापना।

: 'इत्यलम्', 'प्रियजन डेज एंड अदर पोयम्स' एवं जैनेंद्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' का 'दि रिजिग्नेशन' नाम से अंग्रेजी अनुवाद का प्रकाशन।

1947-55 : इलाहाबाद और फिर दिल्ली से 'प्रतीक' पत्रिका का संपादन। दिल्ली ऑल इंडिया रेडियो में कार्य। इसी काल में 'बाबरा अहेरी', 'नदी के द्वीप', 'अरे यायावर रहेगा याद' तथा 'जयदोल' का प्रकाशन, सांस्कृतिक स्थलों का भ्रमण।

: 'दूसरा सप्तक' का 1951 में संपादन।

: मानवेंद्र राय के साथ गहन संपर्क तथा प्रभाव।

: अंग्रेजी पत्रिका 'वाक्' का संपादन।

1955-56 : यूनेस्को की ओर से भारत-भ्रमण। कपिला मलिक से विवाह।

1957-58 : जापान-भ्रमण। जेन-बुद्धिज्म का प्रभाव।

: 'इंद्रधनु रौंदे हुए' का प्रकाशन। कुछ समय तक इलाहाबाद में निवास।

1958-60 : 'तीसरा सप्तक' का 1959 में संपादन।

: यूरोप-भ्रमण एवं 'पिएर-द क्विर' के मठ में एकांतवास।

1961-64 : 'आँगन के पार द्वार' काव्य-संग्रह पर साहित्य अकादेमी, दिल्ली से पुरस्कार।

: कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रोफेसर।

: 'अपने अपने अजनबी' उपन्यास का प्रकाशन।

: इस बीच अमेरिकी कवियों के सहयोग से हिंदी कवियों और अपनी कविताओं के अनुवाद किए।

1964-71 : 'दिनमान' साप्ताहिक का संपादन।

: इसी बीच आस्ट्रेलिया, पूर्वी यूरोप के देशों, सोवियत यूनियन एवं मध्य यूरोप के देशों की यात्रा एवं व्याख्यान।

: 1969 में 'दिनमान' से अलग हो गए। तत्पश्चात कुछ समय तक बर्कले विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर।

1971-77 : सन् 1971-72 में जोधपुर विश्वविद्यालय में 'तुलनात्मक-साहित्य' के प्रोफेसर।

: 1973-74 में जयप्रकाश नारायण के अनुरोध पर 'एवरी मेन्स वीकली' का संपादन।

: दिसंबर 1973 में 'नया प्रतीक' का प्रकाशन-संपादन। अल्मोड़ा के पास उत्तर वृंदावन में श्रीकृष्ण प्रेम आश्रम में कुछ समय निवास।

: 1976 में छह माह के लिए हाइडेलबर्ग-जर्मनी के विश्वविद्यालय में अतिथि प्रोफेसर।

: आपातकाल का गहरा विरोध तथा उद्विग्नता।

1977-80 : प्रमुख हिंदी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' का संपादन।

: 'कितनी नावों में कितनी बार' कविता-संग्रह पर 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार।'

: 1979 में पुरस्कार राशि के साथ अपनी राशि जोड़कर 'वत्सल निधि' की स्थापना—1980 में।

: 'चौथा सप्तक' का संपादन।

1980-87 : 'वत्सल निधि' के तत्त्वावधान में प्रतिवर्ष लेखन-शिविरों, हीरानंद शास्त्री व्याख्यानों एवं रायकृष्णदास व्याख्यानों का आयोजन।

: 'जन जानकी यात्रा' एवं 'भागवत भूमि यात्रा' का आयोजन।

जिसमें प्रमुख लेखक सम्मिलित होते रहे।

: 1983 में स्त्रुगा-यूगोस्लाविया के कविता-सम्मान 'गोल्डन रीथ' से सम्मानित।

: 1984 में हालैंड के 'पोयट्री इंटरनेशनल' में भागेदारी।

: 1985 में साहित्य अकादेमी के शिष्टमंडल में चीन-यात्रा।

: 1986 में फ्रेंकफर्ट पुस्तक मेले में शिरकत।

: 1987 में 'भारत-भारती' सम्मान की घोषणा।

: भारत-भवन, भोपाल में आयोजित 'कवि-भारती' समारोह में भागेदारी।

: 4 अप्रैल, 1987 की सुबह, दिल्ली में देहावसान।

कृतित्व

कविता

1.	भग्नदूत	वी.एच. वात्स्यायन, लाहौर	1933
2.	चिंता	सरस्वती प्रेस, बनारस	1942
3.	इत्यलम	प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली	1946
4.	हरी घास पर क्षण भर	प्रगति प्रकाशन, दिल्ली	1949
5.	बावरा अहेरी	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1954
6.	इंद्रधनु रौंदे हुए ये	सरस्वती प्रेस, बनारस	1947
7.	अरी ओ करुणा प्रभामय	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1959
8.	पुष्करिणी	साहित्य सदन, झाँसी	1959
9.	आँगन के पार द्वार	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1961
10.	पूर्वा (भग्नदूत, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर का संकलन)	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1965
11.	सुनहले शैवाल	अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली	1966
12.	कितनी नावों में कितनी बार	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1967
13.	क्योंकि मैं उसे जानता हूँ	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1970
14.	सागर मुद्रा	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1970
15.	पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1974
16.	महावृक्ष के नीचे	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1977

17.	नदी की बाँक पर छाया	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1981
18.	सदानीरा (दो खंडों में)	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1984
19.	ऐसा कोई घर आपने देखा है	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1986
20.	मरुस्थल	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	1995

नाटक

1.	उत्तर प्रियदर्शी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	1967

संग्रह

1.	विपथगा	भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद	1937
2.	परंपरा	सरस्वती प्रेस, बनारस	1944
3.	अमर वल्लरी और अन्य कहानियाँ	सरस्वती प्रेस, बनारस	
4.	कड़ियाँ तथा अन्य कहानियाँ	सरस्वती प्रेस, बनारस	
5.	कोठरी की बात	प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली	1945
6.	शरणार्थी	शारदा प्रकाशन, बनारस	1948
7.	जयदोल	प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली	1951
8.	ये तेरे प्रतिरूप	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1961
9.	संपूर्ण कहानियाँ (दो खंड)	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1975

उपन्यास

1.	शेखर : एक जीवनी, खंड-1	सरस्वती प्रेस, बनारस	1941
	शेखर : एक जीवनी, खंड-2	सरस्वती प्रेस, बनारस	1944
2.	नदी के द्वीप	सरस्वती प्रेस, बनारस	1951
	(Trans. Island in the Stream)		1971
3.	अपने-अपने अजनबी	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1961
	(Trans. To each his Stranger)		1967/82

4.	बारह खंभा—संयुक्त कृति दस अन्य लेखकों के संग एक प्रयोग		
5.	छाया मेखल	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	
6.	बीनू भगत	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	

डायरी/यात्रा

1.	भवंती	राजपाल एंड संज, दिल्ली (64-70)	1972
2.	अंतरा	राजपाल एंड संज, दिल्ली (70-74)	1975
3.	शाश्वती	राजपाल एंड संज, दिल्ली (75-79)	1979
4.	शेषा	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	1995
5.	अरे यायावार रहेगा याद	सरस्वती प्रेस, बनारस	1953
6.	एक बूँद सहसा उछली	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	1960

निबंध/ गद्य

1.	त्रिशंकु	सरस्वती प्रेस, बनारस	1945
2.	सबरंग		1946
3.	आत्मनेपद	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	1960
4.	हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य	अभिनय भारती ग्रंथमाला, कलकत्ता	1979
5.	सबरंग और कुछ राग		1969
6.	आलवाल	राजकमल, दिल्ली	1971
7.	लिखि कागद कोरे	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1972
8.	अद्यतन	सरस्वती विहार, दिल्ली	1977
9.	जोग लिखी	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1977
10.	संवत्सर	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1978
11.	स्रोत और सेतु	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1978
12.	व्यक्ति और व्यवस्था	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1979
13.	अपरोक्ष	सरस्वती विहार, दिल्ली	1979
14.	युग संधियों पर	सरस्वती विहार, दिल्ली	1981
15.	धारा और किनारे	सरस्वती विहार, दिल्ली	1982

16.	स्मृति लेखा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1982
17.	कहाँ है द्वारका	राजपाल एंड संज, दिल्ली	1982
18.	छाया का जंगल	सरस्वती विहार, दिल्ली	1984
19.	अ सेंस आव टाइम	ओ.यू.पी. दिल्ली	1981
20.	स्मृतिछंदा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1989
21.	आत्मपरक	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1983
22.	केंद्र और परिधि	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1984

अनुवाद

1. अंग्रेजी 'विजिर' स एलीफेंट (इवो आंद्रिक) से 'वजीर का फीला'
2. अंग्रेजी 'विवेकानंद' (रोमाँ रोलाँ) से हिंदी 'विवेकानंद'
3. हिंदी 'त्यागपत्र' (जैनेंद्र कुमार) से अंग्रेजी 'द रेजिग्नेशन' 1946
4. बाङ्ला 'गोरा' (रवींद्रनाथ ठाकुर) से हिंदी 'गोरा'
5. बाङ्ला 'राजा' (रवींद्रनाथ ठाकुर) से हिंदी 'राजा'
6. लागरक्विस्त के तीन उपन्यासों का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद
7. बाङ्ला 'श्रीकान' (शरतचंद्र चट्टोपाध्याय) से हिंदी 'श्रीकांत'
8. लिंकन वाणी 1959

संपादित ग्रंथ

- आधुनिक हिंदी साहित्य (1940) मेरठ, साहित्य-संस्थान
- तारसप्तक (1943) द्वितीय परिवर्द्धित सं.-1963
- दूसरा सप्तक (1951) प्रगति प्रकाशन, दिल्ली
- तीसरा सप्तक (1959) भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
- चौथा सप्तक (1978) सरस्वती विहार, दिल्ली
- पुष्करिणी (1959) साहित्य-सदन, झाँसी
- नए एकांकी (1952)
- नेहरू अभिनंदन ग्रंथ (संयुक्त रूप से, 1949)
- रूपांबरा (हिंदी प्रकृति काव्य-संकलन, 1960), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
- सर्जन और संप्रेषण (वत्सल निधि लेखक शिविर, लखनऊ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985)

- साहित्य का परिवेश (वत्सल निधि लेखक शिविर, आबू, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985)
- साहित्य और समाज परिवर्तन (वत्सल निधि लेखक शिविर, बरगी नगर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986)
- समकालीन कविता में छंद (वत्सल निधि लेखक शिविर, बोधगया, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1987)
- स्मृति के परिदृश्य (संवत्सर व्याख्यानमाला, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1987)
- भविष्य और साहित्य (वत्सल निधि लेखक शिविर, जम्मू, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989)
- होमवती स्मारक ग्रंथ
- 'नए साहित्य-स्रष्टा' ग्रंथमाला (भारतीय ज्ञानपीठ) में
- रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अजित कुमार, शांति मेहरोत्रा के रचना-संकलन
- भारतीय कला-दृष्टि, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
- जन जनक जानकी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
- सामाजिक-यथार्थ और कथा-भाषा, 1986
- भागवत भूमि यात्रा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2010
- अज्ञेय रचनावली (खंड 18) सं. कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2011

❖•❖•❖